बयानुल क़ुरान

हिस्सा अव्वल
तर्जुमा व मुख़्तसर तफ़सीर
तआरुफे क़ुरान

अज़
डॉक्टर इसरार अहमद

بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

अर्ज़े मुरत्तब

क़ुरान हकीम नौए इन्सानी के लिये अल्लाह तआला का आखरी और तकमीली (complete) पैगाम-ए-हिदायत है, जिसे नबी आखिरुज़्ज़मान मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की दावत व तब्लीग में मरकज़ (center) व महवर (axis) की हैसियत हासिल थी। आप ﷺ ने इस क़ुरान की बुनियाद पर ना सिर्फ दुनिया को एक निज़ामे अद्ल इज्तमाई अता फ़रमाया बल्कि इस आदिलाना निज़ाम पर मब्नी एक सालेह मआशरा भी बिलफअल क़ायम करके दिखाया। आप ﷺ ने इस क़ुरान की रहनुमाई में इन्क़लाब के तमाम मराहिल तय करते हुए नौए इन्सानी का अज़ीम तरीन इन्क़लाब बरपा फरमा दिया। चुनाँचे यह क़ुरान महज़ एक किताब नहीं "किताबे इन्क़लाब" है, और इस शऊर के बगैर क़ुरान मजीद की बहुत सी अहम हक़ीक़तें क़ुरान के क़ारी पर मुन्कशिफ (ज़ाहिर) नहीं हो सकतीं।

अल्लाह तआला जज़ा-ए-खैर अता फरमाये सदर मौसिस मरकज़ी अंजुमन खुद्दामुल क़ुरान लाहौर और बानी-ए-तंज़ीमे इस्लामी मोहतरम डॉक्टर इसरार अहमद हफीज़ुल्लाह को जिन्होंने इस दौर में क़ुरान हकीम की इस हैसियत को बड़े वसीअ पैमाने पर आम किया है कि यह किताब अपनी दीगर (अन्य) इम्तियाज़ी हैसियतों के साथ-साथ मौहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ का आला-ए-इन्क़लाब और आप ﷺ के बरपा करदा इन्क़लाब के मुख्तलिफ मराहिल के लिये ब-मंज़िला-ए-मैन्युअल (manual) भी है, लिहाज़ा इसका मुताअला (study) आँहुज़ूर ﷺ की दावत व तहरीक और इन्क़लाबी जद्दो-जहद के तनाज़ुर (दृष्टिकोण) में किया जाना चाहिये और इसके क़ारी को खुद भी "मन्हज-ए-इन्क़लाबे नबवी ﷺ" पर मब्नी इन्क़लाबी जद्दो-जहद में शरीक होना चाहिये। ब-सूरते दीगर (अन्यथा) वह क़ुरान हकीम के मआरफ़ (तालीम) के बहुत बड़े खज़ाने तक रसाई (पहुँच) से महरूम रहेगा।

मोहतरम डॉक्टर साहब ने अपने दौरा-ए-तर्जुमा-ए-क़ुरान (बयानुल क़ुरान) में भी क़ुरान करीम की इस इम्तियाज़ी हैसियत को पेशे नज़र रखा है,

जिसे दावत रुजू इलल क़ुरान के इन्तहाई अहम संगे मील की हैसियत हासिल है। इस बात की ज़रूरत शिद्दत से महसूस हो रही थी कि इस शहरा-ए-आफाक़ "बयानुल क़ुरान" को मुरत्तब करके किताबी सूरत में पेश किया जाये। चुनाँचे राक़िमुल हुरूफ़ ने अल्लाह तआला की ताईद व तौफ़ीक़ तलब करते हुए कुछ अरसा क़ब्ल इस काम का बीड़ा उठाया और पहले "तआरुफे क़ुरान" और फिर रफ्ता-रफ्ता सूरतुल फ़ातिहा और सूरतुल बक़रह की तरतीब व तस्वीद (आलेखन) मुकम्मल की। अब तक मुकम्मल होने वाला काम किताबी सूरत में "बयानुल क़ुरान" (हिस्सा अव्वल) के तौर पर पेश किया जा रहा है। क़ारईन किराम (पाठकों) से इस्तदआ (निवेदन) है कि वह अल्लाह तआला के हुज़ूर इस आजिज़ के लिये उस हिम्मत व इस्तक़ामत (दृढ़ता) की दुआ करें जो इस अज़ीम काम की तकमील के लिये दरकार है।

हाफिज़ खालिद महमूद खिज़र
मुदीर शौबा मतबूआत, क़ुरान अकेडमी लाहौर
नवम्बर, 2008

بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

तक़दीम

इसरार अहमद

इन सतूर के नाचीज़ राक़िम को क़ुरान मजीद का मुफ़स्सिर तो बहुत दूर की बात है, मरव्वजा मफ़हूम के ऐतबार से "आलिमे दीन" होने का भी हरगिज़ कोई दावा नहीं है, ताहम (हालाँकि), खालिसतन "تحديثًا لِلنّعمة" (बहवाला "وَاَمَّا بِنِعۡمَةِ رَبِّكَ فَحَدِّثۡ") अल्लाह तआला की उन नेअमतों के ऐतराफ़ व इज़हार में कोई कबाहत महसूस नहीं होती कि उसने अपने ख़ास फज़्ल व करम से ऐसे हालात पैदा कर दिये कि अवाइल (early) उमर ही में क़ुराने हकीम के साथ एक दिली उन्स (घनिष्ठ परिचय) और ज़ेहनी मुनास्बत (सम्बन्ध) क़ायम होती चली गयी। चुनाँचे अव्वलन बिल्कुल ही नौउम्री में (हाई स्कूल के इब्तदाई सालों के दौरान) अल्लामा इक़बाल की शायरी के ज़रिये क़ुरान की अज़मत, मिल्लते इस्लामी की निशाते सानिया की उम्मीद और इसके ज़िमन में क़ुरान की अहमियत का एक गहरा नक़्श क़ल्ब पर क़ायम फरमा दिया, फिर एक खानदानी रिवायत के मुताबिक़ हाई स्कूल की तालीम के दौरान अरबी को एक इज़ाफ़ी मज़मून की हैसियत से इख़्तियार करने की सूरत पैदा फरमा दी जिससे अरबी ग्रामर की असासात (आधार) का इल्म हासिल हो गया। और फिर मेट्रिक के इम्तिहान के बाद फराग़त के दिनों में, जबकि 1947 ईस्वी के मुस्लिम कश फसादात के नतीजे में हम लगभग एक माह क़स्बा हिसार (जो अब भारत की रियासत हरयाणा में है) में हिन्दुओं के हमलों से दिफ़ाअ (बचाव) के लिये चंद मुहल्लों पर मुश्तमिल एक दिफाई ब्लाक में "महसूर" थे, क़ुरान हकीम से पहले मानवी तआर्रुफ़ की यह सूरत पैदा फरमा दी कि मुझे और मेरे बड़े भाई इज़हार अहमद साहब मरहूम को एक मस्जिद में बैठ कर मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी मरहूम की माहनामा "तर्जुमानुल क़ुरान" में शाया होने वाली तफ़सीर सूरह युसुफ के इज्तमाई के मुताअले और उस पर बाहमी मुज़ाकरे का मौक़ा मिला, जिससे अंदाज़ा हुआ कि क़ुरान फ़साहत व बलाग़त की मेराज और सरचश्मा-ए-हिदायत ही नहीं, बल्कि मिम्बा-ए-इल्म व हिकमत भी है, और वाक़िअतन

इस लायक़ है कि बेहतरीन ज़हनी व फिक्री सलाहियतों को इसके इल्म व फ़हम के हुसूल में इस तौर से सर्फ़ (खर्च) किया जाये कि अव्वलन इसके अमूमी (सामान्य) पैगाम को सही तौर पर समझें जो कि इल्म व हिकमत के बहर-ए-ज़खार की सतह पर बिल्कुल उसी तरह तैर रहा है जैसे किसी तेल बरदार (वाहक) जहाज़ में शिकस्त व रेख्त (विनाश) के बाइस (कारण) उससे निकाल कर बहने वाला तेल सतह समुन्दर पर तैर रहा होता है, और फिर इसकी गहराइयों में गोताज़नी करके इसकी तह से इसके फ़लसफ़ा व हिकमत के असल मोतियों को तलाश करें!

अल्हम्दुलिल्लाह, सुम्मा अल्हम्दुलिल्लाह, कि यह इन ही अमूरे सलासा के नतीजे का ज़हूर था कि जब तक़सीमे हिन्द के वक़्त एक सौ सत्तर मील का सफ़र (हिसार से हैड सुलेमानकी तक) पैदल काफ़िले के साथ आग और खून के दरिया उबूर (पार) करके पाकिस्तान पहुँचना नसीब हुआ तो फ़ौरन तहरीके जमाते इस्लामी के साथ अमली वाबस्तगी (practical commitment) हो गयी। (जो अव्वलन इस्लामी जमीयते तलबा में शमूलियत [सह-भागिता] की सूरत में थी, और उसके बाद जमाते इस्लामी की रुक्नियत की शक्ल में!) और इस पूरे दस साला अरसे के दौरान जमीयत और जमाअत के इज्तमाआत में "दरसे क़ुरान" की ज़िम्मेदारी अमूमन मुझ पर आयद (लागू) होती रही। जिसे बिलउमूम बहुत इस्तेहसान की नज़रों से देखा जाता था। अगरचे मैं अच्छी तरह समझता था कि सामईन (श्रोताओं) की जानिब से यह तहसीन व तारीफ़ इक़बाल के इस शेर के ऐन मुताबिक़ है कि:

ख़ुश आ गयी है जहाँ को क़लंदरी मेरी,
वरना शेर मेरा क्या है! शायरी क्या है!!

मज़ीद बराँ (इसके अलावा) मैं हरगिज़ इसका दावा भी नहीं करता कि मेरे इस तअल्लुम व तदब्बुर क़ुरान के ज़ोक़ व शौक़ में रोज़ अफज़ो (तेज़ी से) इज़ाफे में इस खारजी पसंदीदगी की बिना पर पैदा होने वाली "हिम्मत अफज़ाई" को सिरे से कोई दखल हासिल नहीं था, लेकिन वाक़्या यह है कि मैं अपने दरूस (course) के लिये तैयारी के ज़िमन में जो मुताअला करता और मुख्तलिफ़ अरबी और उर्दू तफासीर से रुजू करता और फिर अपने ज़ाती गौरो फ़िक्र से भी काम लेता तो उसके नतीजे में मुझ पर क़ुरान की अज़मत मुन्कशिफ (स्पष्ट) होती चली गयी। और इस क़ौल को हरगिज़ किसी मुबालगे पर मब्नी ना समझा जाये कि क़ुरान ने मुझे अपना "असीर" (possess) कर लिया। चुनाँचे यह इसी असीरी का मज़हर है कि मैंने 1952 ईस्वी ही में (बीस साल की उम्र में) मेडिकल एजुकेशन के ऐन वस्त (बीच) में ये शऊरी फैसला कर लिया था कि अब यह तिब्ब (मेडिकल) की तालीम भी और तबाबत (प्रैक्टिस) का पेशा भी, सब मेरी तरजीहात में नम्बर दो पर रहेंगे, अव्वलीन तरजीह ख़िदमते क़ुरान हकीम और ख़िदमते दीने मतीन को हासिल रहेगी! और फिर 1971 ईस्वी में क़मरी हिसाब से चालीस साल की उम्र में जब यह महसूस हुआ कि अल्लाह तआला ने अपने ख़ुसूसी फ़ज़ल व करम से मुझ पर अपनी शाने "عَلَّمَ الْقُرْاٰنَ" के साथ-साथ "عَلَّمَهُ الْبَيَانَ" का भी किसी दर्जे में फैज़ान फरमा दिया है तो अपने पेशा-ए-तबाबत को बिल्कुल खैरबाद कह कर अपने आप को हमातन (हर हाल) और हमावक़्त (हर वक़्त) क़ुराने मुबीन और दीने मतीन की ख़िदमत के लिये वक़्फ़ कर दिया।

मुझ पर अल्लाह तआला का एक ख़ास फ़ज़ल व करम इस ऐतबार से भी हुआ कि उसने मुझे किसी एक लकीर का फ़क़ीर होने से बचा लिया। चुनाँचे क़ुरान के इल्म व फ़हम के ज़िमन में मेरे इस्तफ़ादे का हल्क़ा (दायरा) बहुत वसीअ भी है। और बाज़ ऐतबारात से तज़ाद (विरोध) का हामिल (धारक) भी! मैंने अपनी एक तालीफ़ "दावत रुजूअ इलल क़ुरान का मंज़र व पसमंज़र" में इसकी पूरी तफसील दर्ज कर दी है कि मेरे इल्म व फ़हमे क़ुरान के "हौज़" में तफ़सीर क़ुरान के चार सिलसिलों की नहरों से पानी आता रहा, जिन पर पाँचवा इज़ाफा मेरी तालीम में शामिल उलूमे तबीइया (प्राकृतिक विज्ञान) के मबादयात (आधार) का इल्म था। फिर अल्लाह ने मुझे जो मन्तक़ी ज़हन अता फ़रमाया था उसके ज़रिये इन पाँच सिलसिलों से हासिलशुदा मालूमात में "जमीअ व तवाफ़िक़" (synthesis) क़ायम किया। जिसकी बिना पर बहम्दुलिल्लाह मेरे "बयानुल क़ुरान" को एक जामियत हासिल हो गयी। और ग़ालिबन यही इसकी मक़बूलियत का असल राज़ है।(1) वल्लाहु आलम!

एक मुस्तनद "आलिमे दीन" ना होने के बावजूद जिस चीज़ ने मुझे दर्स व तदरीसे क़ुरान की जुर्रात (बल्कि ठेठ मज़हबी हल्क़ों [दायरों] के नज़दीक "जसारत") की हिम्मत अता फ़रमायी, वह नबी अकरम ﷺ का यह क़ौले मुबारक है कि: ((بَلِّغُوْا عَنِّىْ وَلَوْ اٰيَةً)) यानि "पहुँचा दो मेरी जानिब से ख्वाह एक ही आयत!" (सही बुखारी, और उसके अलावा तिरमिज़ी, और अहमद दारमी रहमतुल्लाह अलै०)। चुनाँचे मेरे नज़दीक जिन उलूमे दीनी की तहसील को उल्माये किराम लाज़मी क़रार देते हैं वह किसी के "मुफ़्ती" बनने

के लिये तो लामहाला लाज़मी हैं, लेकिन क़ुरान के दाई और मुबल्लिग़ बनने के लिये हरगिज़ ज़रूरी नहीं हैं। इसलिये कि क़ुरान का पैगाम अगरचे ता क़यामे क़यामत पूरी नौए इंसानी के लिये था, ताहम (हालाँकि) इसके अव्वलीन मुख़ातिब तो "उम्मी" थे। चुनाँचे क़ुरान के असल पैगाम को अल्लाह तआला ने निहायत "यसीर" सूरत में, जैसे कि पहले अर्ज़ किया गया, एक अथाह समुन्दर की सतह पर तैरने वाले तेल के मानिन्द पेश किया (यही वजह है कि सूरतुल क़मर में चार बार फ़रमाया गया):

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْاٰنَ لِلذِّكْرِ فَهَلْ مِنْ مُّدَّكِرٍ

"हमने नसीहत व हिदायत के लिये क़ुरान को बहुत आसान बना दिया है, तो है कोई जो इससे तज़क्कुर हासिल करे!"

क़िस्सा मुख़्तसर- लाहौर में 1965 ईस्वी से मेरे बाज़ाब्ता हल्क़ा मुताअला-ए-क़ुरान (organised centers to understand Quran) क़ायम हुए तो उसके नतीजे में पहले 1972 ई० में मरकज़ी अंजुमन खुद्दामुल क़ुरान लाहौर क़ायम हुई, जिसकी कोख़ से ज़ेली अंजुमनों का एक सिलसिला बरामद हुआ (कराची, मुल्तान, फैसलाबाद, झंग, कोएटा, इस्लामाबाद, पेशावर) फिर 1976 ई० में लाहौर में क़ुरान अकेडमी क़ायम हुई, और उसकी "बेटियों" के तौर पर कराची, मुल्तान, फैसलाबाद और झंग में भी अकेडमियाँ वजूद में आयीं। साथ ही पाकिस्तान के तूल व अर्ज़ में बड़े-बड़े शहरों में मेरे दर्से क़ुरान की महफ़िलें मुनअक्किद (आयोजित) होने लगीं। फिर क़ुरानी तरबियत गाहों (जो एक हफ़्ते से लेकर एक महीने तक के अरसे पर मुहीत होती थीं) का सिलसिला शुरू हुआ। इधर लाहौर में सालाना क़ुरान कॉन्फ्रेंसों का सिलसिला जारी हुआ और फिर जब पाकिस्तान टेलिविज़न पर यह दर्से क़ुरान शुरू हुआ तो अव्वलन अल् किताब फिर अलिफ़ लाम मीम फिर नबी कामिल (ﷺ) और बिल आख़िर "अल् हुदा" का हफ़्तावार प्रोग्राम जो पूरे पन्द्रह महीने इस शान से जरी रहा कि हफ़्ते के एक ही दिन, एक ही वक़्त पर, पाकिस्तान के तमाम टी०वी० स्टेशनों से नशर (प्रसारित) होता था। तो उस ज़माने में जो मक़बूलियत हासिल हुई उसकी बिना पर मुझे अपने बारे में वह शदीद अन्देशा लाहक़ हो गया था जिसका ज़िक्र एक हदीस में आया है कि आँहुज़ूर ﷺ ने इरशाद फ़रमाया: "किसी शख्स की तबाही के लिये यह बात काफी है कि उसकी जानिब उँगलियाँ उठनी शुरू हो जायें!" इस पर दरयाफ्त किया गया कि: "अगर यह किसी चीज़ की बुनियाद पर हो तो क्या तब भी?" तो आप ﷺ ने फ़रमाया: "हाँ तब भी, इसलिये कि इससे इन्सान के लग़ज़िश में मुब्तला होने (यानि उसमें उजुब [बदलाव] और तकब्बुर जैसी हलाकत ख़ेज़ बीमारियों के पैदा हो जाने) का अन्देशा पैदा हो जाता है। इल्ला (सिवाय) यह कि अल्लाह की रहमत शामिल हाल हो!" (इस हदीस को मुहद्दिस ज़हबी रहि० ने हज़रत इमरान बिन हुसैन (रज़ि०) से रिवायत किया है, अगरचे इसकी रिवायत में किसी क़दर ज़ौफ़ मौजूद है।) इसलिये कि उस ज़माने में फिल वाक़ेअ कैफ़ियत यह हो गई थी कि मैं जिधर जाता था लोग एक-दूसरे को इशारों के ज़रिये मेरी तरफ़ मुतवज्जा करते थे। यह भी उस ज़माने की बात है कि मुझसे मुतअद्दिद (कई) लोगों ने तफसीरे क़ुरान लिखने की फ़रमाइश की, और एक पब्लिशर ने तो बहुत इसरार किया कि आप एक तर्जुमा-ए-क़ुरान ही लिख दें। लेकिन मैंने हमेशा और सबसे यही कहा कि मेरा मक़ाम नहीं है! इस दावते क़ुरानी में अगरचे मेरा ज़्यादा ज़ोर क़ुरान के चीदा-चीदा (ख़ास-ख़ास) मक़ामात पर मुश्तमिल "मुताअला-ए-क़ुरान हकीम के एक मुन्तखब निसाब" के दर्स पर रहा, लेकिन बहम्दुलिल्लाह दो बार पूरे क़ुरान मजीद का दर्स देने की सआदत (सौभाग्य) भी हासिल हुई, अगरचे वह सारा टेप रिकॉर्डशुदा मौजूद नहीं है!

इस दावते क़ुरानी का नुक़्ता-ए-उरूज यह था कि 1948 ई० (1404 हिजरी) में नमाज़े तरावीह के साथ दौरा-ए-तर्जुमा-ए-क़ुरान का आग़ाज़ हुआ। चुनाँचे हर चार रकअत तरावीह से क़ब्ल उन रकाअतों में पढ़ी जाने वाली आयात का तर्जुमा और मुख़्तसर तशरीह बयान होती थी, फिर नमाज़ में उनकी समाअत होती थी, जिसके नतीजे में, बाज़ लोगों में कम और बाज़ में ज़्यादा, वह कैफ़ियत पैदा हो जाती थी जिसे इक़बाल ने अपने इस शेर में बयान किया है कि:

तेरे ज़मीर पर जब तक ना हो नुज़ूले किताब
गिरह कुशा है ना राज़ी ना साहिबे कशाफ़!

इस अमल के नतीजे में नमाज़े इशा और नमाज़े तरावीह की तकमील में लगभग छ: घंटे सर्फ़ (खर्च) होते थे। और बहम्दुलिल्लाह सामईन का जोशो ख़रोश और ज़ोक़ो शौक़ दीदनी होता था। और सुम्मा अल्हम्दुलिल्लाह कि अब यह सिलसिला पाकिस्तान के बहुत से मक़ामात पर मेरी सल्बी और माअनवी औलाद के ज़रिये जारी है!

इस सिलसिले में दौरा-ए-तर्जुमा-ए-क़ुरान का जो प्रोग्राम 1998 ई० में कराची की क़ुरान अकेडमी की जामा मस्जिद में हुआ, उसकी ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग आला मैयार पर की गयी थी। चुनाँचे यह बहम्दुलिल्लाह ऑडियो-वीडियो कैसिटों और C.Ds और D.V.Ds और टी०वी० चैनल्स के ज़रिये पूरी दुनिया में निहायत वसीअ पैमाने पर फ़ैल चुका है। और अब इसे किताबी शक्ल में भी शाया (प्रकाशित) करने का सिलसिला शुरू हो रहा है, जिसकी पहली जिल्द आपकी ख़िदमत में हाज़िर है! इसकी तबाअत व अशाअत (printing & publishing) के सिलसिले में अंजुमन खुद्दामुल क़ुरान सूबा सरहद के सदर जनाब डॉक्टर इक़बाल साफ़ी ने ताकीद (focus) का जो दबाव मरकज़ी अंजुमन पर बरक़रार रखा और माली तआवुन (सहयोग) भी पेश किया, उसकी बिना पर इससे इस्तफादह (फ़ायदा) करने वाले हर शख्स पर उनका यह हक़ है कि उनके लिये दुआये खैर ज़रूर करे।

आखरी बात यह कि इस "बयानुल क़ुरान" के ज़िमन में अगर असहाबे इल्म मेरी गलतियों की निशानदेही करें तो मैं ममनून (आभारी) हूँगा। और आइन्दा तबाअत (प्रिंटिंग) में तसहीह (सुधार) भी कर दी जायेगी। इस बात को दोहराने की चंदआँ ज़रूरत नहीं है कि मैं ना मुफ़स्सिर होने का मुद्दई हूँ ना आलिम होने का, बल्कि सिर्फ अल्लाह के कलामे पाक और उसके दीने मतीन का अदना ख़ादिम हूँ। और मेरी सब हज़रात से इस्तदआ (निवेदन) है कि मेरे हक़ में दुआ करें कि अल्लाह मेरी मसाई (कोशिशों) को शर्फे क़ुबूल अता फरमाये और निजाते उखरवी का ज़रिया बना दे। आमीन! या रब्बल आलमीन!

(नोट: इस पूरी बहस में मैंने अक़ामते दीन की अमली जद्दो-जहद के लिये तंज़ीमे इस्लामी के क़ियाम का ज़िक्र नहीं किया। इसलिये कि यह एक मुस्तक़िल और जुदागाना बाब है, और इस मुख़्तसर 'तक़दीम' में ना उसकी गुंजाइश है ना ज़रूरत। ताहम उसके लिये मेरी तालीफात "तहरीक जमाते इस्लामी: एक तहक़ीक़ी मुताअला" और "सिलसिला-ए-अशाअत तंज़ीमे इस्लामी" अज़ अव्वल ता दहम का मुताअला मुफ़ीद होगा।)

दुआ का तालिब

ख़ाकसार **इसरार अहमद** अफ़ी अन्हु

26 नवम्बर, 2008

तक़दीम तबीअ सालिस

"बयानुल क़ुरान" (हिस्सा अव्वल) के पहले दो एडिशन चंद ही माह में (यानि देखते ही देखते!) ख़त्म हो गये। और यह बात मेरे लिये बहुत हैरतअंगेज़ है। इसलिये कि मैं अव्वलन तो मुफ़स्सिरे क़ुरान ही नहीं हूँ, सानियन मेरा किसी मारूफ़ मज़हबी फ़िरक़े या मस्लक से कोई तंज़ीमी ताल्लुक़ भी नहीं है। इन अमूर (विवादों) के अलल-रग्म (बावजूद) इसकी इस क़दर पज़ीराई (अभिवादन) यक़ीनन अल्लाह तआला की किसी ख़ुसूसी मशीयत (मर्ज़ी) की मज़हर (घोषणा) है। वल्लाहु आलम!!

क़ुरान हकीम की इस तर्जुमानी में अगर कोई खैर वजूद में आया है तो वह सरासर अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम से है। और खालिसतन उसकी अता व मरहम्मत (अनुदान) का नतीजा है। और अगर किसी मक़ाम पर कोई गलती हो गई है तो वह सरासर मेरे इल्म या फ़हम का क़सूर है, जिसके लिये अल्लाह तआला से भी अफ्व व दरगुज़र का तलबगार हूँ। और अहले इल्म हज़रात से भी तवक्क़ो रखता हूँ कि इस पर खालिसतन फरमाने नबवी صلى الله عليه وسلم "الدِّيْنُ النَّصِيْحَةُ" के मुताबिक़ मुतनब्बा (टिप्पणी) फरमा कर सवाब हासिल करेंगे! और ज़ाती तौर पर मैं भी ममनूअ हूँगा!!

इस जिल्द में अभी सिर्फ सूरतुल फ़ातिहा और सूरतुल बक़रह की तर्जुमानी हुई है, गोया कि अभी पहाड़ जैसा भारी काम बाक़ी है। ताहम अल्लाह तआला के फ़ज़्ल व करम से तवक्क़ो है कि जैसे उसने, मेरे किसी इरादे या मंसूबाबंदी के बगैर और मेरी खालिस ला-इल्मी में पेशे नज़र जिल्द शाया करा दी, वैसे ही बाक़ी भी शाया करा देगा, ख्वाह ख़ुद मेरी इस दुनिया से दारे आख़िरत की जानिब रवानगी के बाद ही सही। आख़िर में दुआ है:

اللّٰھمّ تقبّل منّی فانّک خیرُ المُتقبِّلیُن وتُب عَلَیَّ فانّک انت التوّابُ الرّحیم!

آمین! یاربّ العٰلمین!!

ख़ाकसार **इसरार अहमद** अफ़ी अन्हु

08 अगस्त, 2009

❀ ❀ ❀

<u>बाब अव्वल</u>

क़ुरान के बारे में हमारा अक़ीदा

तअर्रुफ़े क़ुरान मजीद के सिलसिले में सबसे पहली बात यह है कि क़ुरान हकीम के बारे में हमारा ईमान, या इस्तलाहे आम में हमारा अक़ीदा क्या है?

क़ुरान हकीम के मुताल्लिक़ अपना अक़ीदा हम तीन सादा जुमलों में बयान कर सकते हैं:

1) क़ुरान अल्लाह का कलाम है।

2) यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर नाज़िल हुआ है।

3) यह हर ऐतबार से महफ़ूज है, और कुल का कुल मन व अन मौजूद है, और इसकी हिफ़ाजत का ज़िम्मा ख़ुद अल्लाह तआला ने लिया है।

यह तीन जुमले हमारे अक़ाइद की फ़ेहरिस्त के ऐतबार से, क़ुरान हकीम के बारे में हमारे अक़ीदे पर किफ़ायत करेंगे। लेकिन इन्हीं तीन जुमलों के बारे में अगर ज़रा तफ़्सील से गुफ़्तगू की जाये और दिक़्क़ते नज़र से इन पर ग़ौर किया जाये तो कुछ इल्मी हक़ाइक सामने आते हैं। तम्हीदी ग़ुफ़्तगू में इनमें से बाज़ की तरफ़ इज्मालन इशारा मुनासिब मालूम होता है।

(1) क़ुरान : अल्लाह तआला का कलाम

सबसे पहली बात कि क़ुरान मजीद अल्लाह का कलाम है, ख़ुद क़ुरान मजीद से साबित है। चुनाँचे सूरतुल तौबा की आयत 6 में अल्लाह तआला ने नबी अकरम ﷺ से फ़रमाया:

وَاِنْ اَحَدٌ مِّنَ الْمُشْرِكِيْنَ اسْتَجَارَكَ فَاَجِرْهُ حَتّٰى يَسْمَعَ كَلٰمَ اللّٰهِ ثُمَّ اَبْلِغْهُ مَاْمَنَهٗ

"और अगर मुशरिकीन में से कोई शख़्स पनाह माँग कर तुम्हारे पास आना चाहे (ताकि अल्लाह का कलाम सुने) तो उसे पनाह दे दो यहाँ तक कि वह अल्लाह का कलाम सुन ले, फिर उसे उसकी अमन की जगह तक पहुँचा दो।"

जब सूरतुल तौबा की पहली छः आयात नाज़िल हुईं, जिनमें से मुशरिकीने अरब को आख़िरी अल्टीमेटम दे दिया गया कि अगर तुम ईमान न लाये तो चार माह की मुद्दत के ख़ात्मे के बाद तुम्हारा क़त्लेआम शुरू हो जायेगा, तो इस ज़िमन में नबी अकरम ﷺ को एक हिदायत यह भी दी गई कि यह अल्टीमेटम दिये जाने के बाद अगर मुश्रिकीन में से कोई आप ﷺ की पनाह तलब करे तो वह आप ﷺ के पास आकर मुक़ीम हो और कलाम अल्लाह को सुने, जिस पर ईमान लाने की दावत दी जा रही है, फिर उसे उसकी अमन की जगह तक पहुँचा दिया जाये। यानि ऐसा नहीं होना चाहिए कि वहीं उससे मुतालबा किया जाये कि फ़ैसला करो कि आया तुम ईमान लाते हो या नहीं। इस वक़्त मैंने इस आयत का हवाला सिर्फ़ "कलाम अल्लाह" के अल्फ़ाज़ के लिये शहादत के तौर पर दिया है।

<u>कलाम इलाही : जुमला सिफ़ाते इलाहिया का मज़हर</u>

क़ुरान मजीद के कलाम अल्लाह होने में ही इसकी असल अज़मत का राज़ मज़्मर है। इसलिये कि कलाम मुतकल्लिम की सिफ़त होता है और उसमें मुतकल्लिम की पूरी शख़्सियत हवीदा होती है। चुनाँचे आप किसी भी शख़्स का कलाम सुन कर अंदाज़ा कर सकते हैं कि उसके इल्म और फ़हम व शऊर की सतह क्या है। आ या वह तालीम याफ़्ता इंसान है, महज़ब है, मुतमदन है या कोई उजड्ड गँवार है। इस ऐतबार से दरहक़ीक़त यह कलाम अल्लाह, अल्लाह तआला की जुमला सिफ़ात का मज़हर है, इसी हक़ीक़त को अल्लामा इक़बाल ने निहायत ख़ूबसूरत अंदाज़ में बयान किया:

फ़ाश गोयम आँच दर दिल मज़मर अस्त
ईं किताबे नीस्त, चीज़े दीगर अस्त
मिसल हक़ पिन्हाँ व हम पैदा सत ईं!
ज़िन्दा व पाइन्दा व गोया सत ईं!

(जो बात मेरे दिल में छुपी हुई है वह मैं साफ़-साफ़ कह देता हूँ कि यह (क़ुरान हकीम) किताब नहीं है, कोई और ही शय है। चुनाँचे यह हक़ तआला की ज़ात के मानिंद पोशीदा भी है और ज़ाहिर भी है। नेज़ यह हमेशा ज़िन्दा और बाक़ी रहने वाला भी है और यह कलाम भी करता है।)

मुख़्तलिफ़ मफ़ाहीम व मायने के लिये इस शेर का हवाला दे दिया जाता है, लेकिन क़ाबिले ग़ौर बात यह है कि इसमें इसके "चीज़े दीगर" होने का कौनसा पहलू उजागर किया जा रहा है। इसमें दर हक़ीक़त सूरतुल हदीद के उस मुक़ाम की तरफ़ इशारा हो गया है कि: {هُوَ الْاَوَّلُ وَالْاٰخِرُ وَالظَّاهِرُ وَالْبَاطِنُ} (आयत 3) यानि अल्लाह तआला की शान यह है कि वह الاوّل भी है और الاخر भी, वह الظاهر भी है और الباطن भी। इसी तरह अल्लामा कहते हैं कि इस क़ुरान की भी यही शान है। नेज़ जिस तरह अल्लाह तआला की सिफ़त الحىّ القيّوم (आयतल कुर्सी, सूरतुल बक़रह) है इसी तरह यह कलाम भी ज़िन्दा व पाइन्दा है, हमेशा रहने वाला है। फिर यह सिर्फ़ कलाम नहीं, ख़ुद मुतकल्लिम (बात करने वाला) है।

यहाँ कलाम और मुतकल्लिम के माबैन (दर्मियान) फर्क़ के हवाले से मुतकल्लमीन कि उस बहस की तरफ़ इशारा करना ज़रूरी मालूम होता है कि ज़ाते हक़ की सिफ़ात, ज़ात से अलैहदा और मुस्तज़ाद हैं या ऐन ज़ात? अल्लामा इक़बाल ने भी अपनी मशहूर नज़्म "इब्लीस की मजलिस-ए-शूरा" में इस बहस का ज़िक्र किया है:

हैं सिफ़ाते ज़ाते हक़, हक़ से जुदा या ऐन ज़ात?
उम्मत मरहूम की है किस अक़ीदे में निजात?

यह इल्मे कलाम का एक निहायत ही पेचीदा, ग़ामज़ और अमीक़ मसला है, जिस पर बड़ी बहसें हुईं और बिलआख़िर मुतकल्लमीन का इस पर तक़रीबन इज्माअ हुआ कि "لَا عَيْنٌ وَلَا غَيْرٌ" यानि अल्लाह की सिफ़ात को न उसकी ज़ात का ऐन क़रार दिया जा सकता है न उसका ग़ैर। अगर इस हवाले से ग़ौर करें तो क़ुरान हकीम भी, जो अल्लाह तआला की सिफ़त है, इसी के ज़ेल में आयेगा, यानि ना इसे अल्लाह का ग़ैर कहा जा सकता है न उसका ऐन।

चुनाँचे इस हवाले से सूरतुल हश्र की आयत 21 क़ुरान मजीद की फी नफ़्सी अज़मत के ज़िमन में अहम तरीन है:

لَوْ اَنْزَلْنَا هٰذَا الْقُرْاٰنَ عَلٰى جَبَلٍ لَّرَاَيْتَهٗ خَاشِعًا مُّتَصَدِّعًا مِّنْ خَشْيَةِ اللّٰهِ ۭ وَتِلْكَ الْاَمْثَالُ نَضْرِبُهَا لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَفَكَّرُوْنَ ﴿٢١﴾

"अगर हम इस क़ुरान को किसी पहाड़ पर उतार देते तो तुम देखते कि वह अल्लाह तआला की ख़शियत और ख़ौफ से दब जाता और फट जाता, और यह मिसालें हैं जो हम लोगों के लिये बयान करते हैं ताकि वह ग़ौर करें।"

इस तम्सील को सूरतुल आराफ़ की आयत 143 के हवाले से समझा जा सकता है जिसमें अल्लाह तआला की तलबी पर हज़रत मूसा अलै० के कोहे तूर पर हाज़िर होने का वाक़िया बयान हुआ है। यह वही तलबी थी जिसमें आप अलै० को तौरात अता की गयी। उस वक़्त अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा अलै० को मुख़ातबह व मुकालमह से सरफ़राज़ फ़रमाया तो उनकी आतिशे शौक़ कुछ और भड़की और उन्होंने फ़रमाइश करते हुए कहा

رَبِّ اَرِنِيْٓ اَنْظُرْ اِلَيْكَ ۭ

"ऐ परवरदिगार! मुझे अपना दीदार अता फ़रमा।"

मुख़ातबह व मुकालमह के शर्फ़ से तूने मुझे मुशर्रफ फ़रमाया है, अब ज़रा मज़ीद करम फ़रमा। इस पर जवाब मिला:

لَنْ تَرٰىنِيْ

"(मूसा) तुम मुझे हरगिज़ नहीं देख सकते!"

وَلٰكِنِ انْظُرْ اِلَى الْجَبَلِ

"लेकिन ज़रा उस पहाड़ की तरफ़ देखो, मैं उस पर अपनी एक तजल्ली डालूँगा।"

فَاِنِ اسْتَقَرَّ مَكَانَهٗ فَسَوْفَ تَرٰىنِيْ ۚ

"चुनाँचे अगर वह पहाड़ अपनी जगह पर क़ायम रह जाये तो फिर तुम भी गुमान कर लेना कि तुम मुझे देख सकोगे।"

فَلَمَّا تَجَلّٰى رَبُّهٗ لِلْجَبَلِ جَعَلَهٗ دَكًّا وَّخَرَّ مُوْسٰى صَعِقًا ۚ

"फिर जब अल्लाह तआला ने उस पहाड़ पर अपनी तजल्ली डाली तो वह "دَكًّا دَكًّا" (रेज़ा-रेज़ा) हो गया और मूसा अलै० बेहोश होकर गिर पड़े।"

यहाँ "دَكًّا" के दोनों तर्जुमे किये जा सकते हैं, यानि रेज़ा-रेज़ा हो जाना, टूट-फूट कर टुकडे-टुकडे हो जाना, या कूट-कूट कर किसी शय को हमवार कर देना, बराबर कर देना। जैसे सूरतुल फ़जर की आयत {كَلَّآ اِذَا دُكَّتِ الْاَرْضُ دَكًّا دَكًّا ﴿٢١﴾} में इन मायनों में वारिद हुआ है। वही लफ़्ज़ यहाँ पहाड़ के बारे में आया है। यानी वह पहाड़ रेज़ा-रेज़ा हो गया या दब गया, ज़मीन के साथ बैठ गया।

मूसा अलै० ने अल्लाह तआला की यह तजल्ली देखी जो बिलवास्ता थी, यानि बराहे रास्त हज़रत मूसा अलै० पर नहीं बल्कि पहाड़ पर थी और हज़रत मूसा अलै० बिलवास्ता उसका नज़ारा कर रहे है थे, लेकिन ख़ुद हज़रत मूसा अलै० की कैफ़ियत यह हुई कि

وَخَرَّ مُوْسٰى صَعِقًا *"हज़रत मूसा (अलै०) बेहोश होकर गिर पड़े।"*

यहाँ ज़ात व सिफ़ाते बारी तआला की बहस का एक अक़ीदा हल हो जाता है कि जैसे अल्लाह तआला ने अपनी ज़ात की तजल्ली पहाड़ पर डाली तो वह पहाड़ दब गया फट गया, रेज़ा-रेज़ा हो गया, इसी तरह क़ुरान मजीद के मुताल्लिक़ फ़रमाया:

لَوْ اَنْزَلْنَا هٰذَا الْقُرْاٰنَ عَلٰى جَبَلٍ لَّرَاَيْتَهٗ خَاشِعًا مُّتَصَدِّعًا مِّنْ خَشْيَةِ اللّٰهِ

यानि कलाम अल्लाह की भी वही कैफ़ियत और तासीर है जो कैफ़ियत व तासीर तजल्लिये ज़ाते इलाही की है। इसलिये कि क़ुरान अल्लाह का कलाम और अल्लाह की सिफ़त है। तो तजल्लिये सिफ़ात और तजल्लिये ज़ात में कोई फ़र्क नहीं।

अलबत्ता अल्लामा इक़बाल ने एक जगह इस बारे में ज़रा मुबालगा आराई से काम लिया। अल्लामा ने हुज़ूर ﷺ की मदह फ़रमाते हुए यह अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किये:

मूसा ज़े होश रफ़त बैक जलवये सिफ़ात
तो ऐने ज़ात मी नगरी व तबस्समी!

अल्लामा हज़रत मुहम्मद ﷺ का हज़रत मूसा अलै० से तक़ाबुल कर रहे हैं कि वह तो तजल्लिये सिफ़ात के बिलवास्ता नज़ारे ही से बेहोश होकर गिर गये, लेकिन ऐ नबी ﷺ! आपने ऐने ज़ात का दीदार किया और तबस्सुम की कैफ़ियत में किया। इसमें दो ऐतबारात से मुग़ालता पाया जाता है। अव्वल तो वह तजल्ली, तजल्लिये सिफ़ात नहीं तजल्लिये ज़ात थी जो हज़रत मूसा अलै० की फ़रमाईश पर अल्लाह तआला ने पहाड़ पर डाली। जैसा कि क़ुरान मजीद में है: {فَلَمَّا تَجَلّٰى رَبُّهٗ لِلْجَبَلِ} गोया यहाँ अल्लाह तआला के लिये यह लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है कि वह ख़ुद मुतजल्ली हुआ। दूसरे यह कि यह ख्याल भी मुख्तलिफ़ फ़ेह है कि नबी अकरम ﷺ ने शबे मेराज में ज़ाते इलाही का मुशाहदा किया। अगरचे हमारे असलाफ़ में यह राय भी है कि आप ﷺ ने अल्लाह तआला को देख़ा है, लेकिन अकसर व बेशतर की राय इसके बरअक्स है, इसलिये कि वहाँ भी "आयात" का ज़िक्र है। जैसा कि सूरतुल नज्म में आया: {لَقَدْ رَاٰى مِنْ اٰيٰتِ رَبِّهِ الْكُبْرٰى ۝} इसमें कोई शक नहीं कि वह आयात, जो वहाँ हुज़ूर नबी अकरम ﷺ ने देखीं, अल्लाह तआला की अज़ीम-तरीन आयात में से हैं।

اِذْ يَغْشَى السِّدْرَةَ مَا يَغْشٰى ۝ مَا زَاغَ الْبَصَرُ وَمَا طَغٰى ۝ لَقَدْ رَاٰى مِنْ اٰيٰتِ رَبِّهِ الْكُبْرٰى ۝ *"उस वक़्त बेरी पर छा रहा था जो कुछ कि छा रहा था। निगाह ना चुन्धियाई और ना हद से मुतजाविज़ हुई। और उसने अपने रब की बड़ी-बड़ी निशानियाँ देखीं।"*

अब उससे ज़्यादा बड़ी आयात और उससे ज़्यादा बड़ी तजल्लिये इलाही और कहाँ होगी? लेकिन दोनों ऐतबार से इस शेर में मुबालगा है। अलबत्ता इस आयते मुबारका के हवाले से अल्लामा के इस शेर

मिसले हक़ पिन्हाँ व हम पैदा सत ईं!
ज़िन्दा व पाइन्दा व गोया सत ईं!

में मेरे नज़दीक क़तअन कोई मुबालगा नहीं है। और इस आयत मुबारका के हवाले से वह बात कही जा सकती है जो अल्लामा इक़बाल ने इस शेर में कही है।

तौरात की गवाही

अब ज़रा क़ुरान मजीद के कलामुल्लाह होने के हवाले से एक और बात ज़हननशीन कर लीजिये। तौरात में किताबे इस्तस्ना या सफ़रे इस्तस्ना जो सुहुफ़े मूसा में से एक सहीफ़ा है, के अट्ठारहवें बाब में नबी अकरम ﷺ के लिये जो पेशनगोई बयान की गयी है उसमें अल्फ़ाज़ यहीं है कि:

"मैं उनके भाईयों में से उनके लिये तेरी मानिंद एक नबी बरपा करूँगा और उसके मुँह में अपना कलाम डालूँगा और वह उनसे वही कुछ कहेगा जो मैं उससे कहूँगा।"

मैंने यहाँ ख़ास तौर पर उन अल्फ़ाज़ का हवाला दिया है कि "मैं उसके मुँह में अपना कलाम डालूँगा।" यहाँ एक तो लफ़्ज़ कलाम आया है जैसे कि क़ुरान हकीम की इस आयत में आया {حَتّٰى يَسْمَعَ كَلٰمَ اللّٰهِ} फिर "कलाम मुँह में

डालना” के हवाले से क़ुरान मजीद में एक लफ़्ज़ दो मर्तबा आया है, वह लफ़्ज़ “क़ौल” है, यानी क़ुरान को क़ौल क़रार दिया गया है।
सूरतुल हाक़्क़ा में है:

اِنَّهٗ لَقَوۡلُ رَسُوۡلٍ كَرِيۡمٍ ۚ ۙ﴿۴۰﴾ وَّمَا هُوَ بِقَوۡلِ شَاعِرٍ ؕ قَلِيۡلًا مَّا تُؤۡمِنُوۡنَ ﴿۴۱﴾ وَلَا بِقَوۡلِ كَاهِنٍ ؕ قَلِيۡلًا مَّا تَذَكَّرُوۡنَ ﴿۴۲﴾

और सूरतुल तकवीर में यह अल्फ़ाज़ वारिद हुए हैं:

اِنَّهٗ لَقَوۡلُ رَسُوۡلٍ كَرِيۡمٍ ﴿۱۹﴾ ذِىۡ قُوَّةٍ عِنۡدَ ذِى الۡعَرۡشِ مَكِيۡنٍ ﴿۲۰﴾ مُّطَاعٍ ثَمَّ اَمِيۡنٍ ﴿۲۱﴾ وَمَا صَاحِبُكُمۡ بِمَجۡنُوۡنٍ ﴿۲۲﴾

और इसी सूरह में आगे चलकर आया:

وَمَا هُوَ بِقَوۡلِ شَيۡطٰنٍ رَّجِيۡمٍ ﴿۲۵﴾

क़ाबिले तवज्जह अम्र यह है कि इन दो मक़ामात में से मौअक्खर अज़ज़िक्र के मुताल्लिक़ तक़रीबन इजमाअ है कि यहाँ हज़रत जिब्राईल अलै० मुराद हैं। गोया क़ुरान को उनका क़ौल क़रार दिया गया। और सूरतुल हाक़्क़ा में इसे नबी ﷺ का क़ौल क़रार दिया जा रहा है। अब ज़ाहिर है यहाँ जिन चीजों की नफ़ी की जा रही है कि “यह किसी शायर का क़ौल नहीं” और “यह किसी काहिन का क़ौल नहीं” इनसे यक़ीनन रसूल करीम ﷺ मुराद हैं। यूँ समझिये कि अल्लाह का कलाम पहले हज़रत जिब्राईल अलै० पर नाज़िल हुआ। अगर मैं किताबे इस्तस्ना के अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करूँ तो यहाँ “अल्लाह ने अपना कलाम उनके मुँह मे डाला।” ताहम “उनके मुँह” का हम कोई तसव्वुर नहीं कर सकते, वह निहायत जलीलो क़द्र फ़रिश्ते हैं। बहरहाल क़ौल का लफ़्ज़ क़ुरान मजीद के लिये इस्तेमाल हुआ है जिससे ज़ाहिर है कि इब्तदाअन कलामे इलाही हज़रत जिब्रील अलै० के क़ौल की शक्ल में उतरा और फिर हज़रत जिब्रील अलै० के ज़रिये से हज़रत मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के मुँह में डाला गया, और वहाँ से यह क़ौले मुहम्मद ﷺ की सूरत में लोगों के सामने आया, इसलिये कि यह आप ﷺ ही की ज़बाने मुबारक से अदा हुआ, लोगों ने उसे सिर्फ़ आप ही के ज़बाने मुबारक से सुना। गोया यह क़ौल, क़ौले शायर नहीं, यह क़ौले काहिन नहीं, यह क़ौले शैतान रजीम नहीं, बल्कि यह क़ौले रसूले करीम है और रसूले करीम अव्वलन मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ हैं, यह लोगों के सामने उनके क़ौल की हैसियत से आया है। फिर सनियन (दूसरे) यह हज़रत जिब्राईल अलै० का क़ौल है, इसलिये कि उन्होंने यह क़ौल हुज़ूर ﷺ को पहुँचाया। और इसको आख़िरी दर्जे तक पहुँचाने पर यह अल्लाह का कलाम है जिसके मुताल्लिक़ तौरात में अल्फ़ाज़ आये हैं कि “मैं उसके मुँह में अपना कलाम डालूँगा।”

लौहे महफ़ूज़ और मुसहफ़ में मुताबक़त

कलाम होने के हवाले से तीसरी बात यह नोट कीजिये कि कलाम अल्लाह की सिफ़त है और अल्लाह की सिफ़ात क़दीम (प्राचीन) है। अल्लाह की ज़ात की तरह उसकी सिफ़ात का भी यही मामला है। ज़ाहिर है कि अल्लाह तआला माद्दियत (पदार्थवादी) और जिस्मानियत (भौतिक उपस्थिति) से मा वरा है। यही मामला अल्लाह की सिफ़ात का भी है चुनाँचे कलाम अल्लाह, जिसे हर्फ़ो सूत की महदूदियत (परिसीमाओं) से आला व अरफ़ा ख़्याल किया जाता है, उसे अल्लाह तआला ने इंसानों की हिदायत के लिये हरूफ़ व असवात का जामा (लिबास) पहनाया और सय्यदुल मुर्सलीन ﷺ के क़ल्बे मुबारक पर बतरीक़े तन्ज़ील नाज़िल फ़रमाया। यही कलाम लौहे महफ़ूज़ में अल्लाह के पास मंदर्ज (लिखा हुआ महफ़ूज़ है) है जिसे उम्मुल किताब या किताबे मकनून भी कहा गया है। हमारे पास मौजूद क़ुरान मजीद या मुसहफ़ की इबारत बैन ही (बिल्कुल) वही है जो लौहे महफ़ूज़ या उम्मुल किताब में है, बिल्कुल उसी तरह जैसे किसी दस्तावेज़ की मस्दक़ह नक़ल (xerox copy) हो, जो बगैर किसी शोशे के फ़र्क़ के असल के मुताबिक़ हो। चुनाँचे सूरतुल बुरूज में फ़रमाया:

بَلۡ هُوَ قُرۡاٰنٌ مَّجِيۡدٌ ﴿۲۱﴾ فِىۡ لَوۡحٍ مَّحۡفُوۡظٍ ﴿۲۲﴾

“यह क़ुरान निहायत बुज़ुर्ग व बरतर है और यह लौहे महफ़ूज़ में है।”

इसी के मुताल्लिक़ सूरतुल वाक़िया में इर्शाद फ़रमाया गया:

اِنَّهٗ لَقُرۡاٰنٌ كَرِيۡمٌ ﴿۷۷﴾ فِىۡ كِتٰبٍ مَّكۡنُوۡنٍ ﴿۷۸﴾ لَّا يَمَسُّهٗۤ اِلَّا الۡمُطَهَّرُوۡنَ ﴿۷۹﴾

“यह तो एक किताब है बड़ी करीम, बहुत बाइज़्ज़त, और एक ऐसी किताब है जो छुपी हुई है। जिसे छू ही नहीं सकते मगर वही जो बहुत ही पाक कर दिए गए हैं।”

यानी मलाइका मुक़र्रबीन, जिनके बारे में एक और मक़ाम पर फ़रमाया गया:

فِیْ صُحُفٍ مُّكَرَّمَةٍ ۝ مَّرْفُوْعَةٍ مُّطَهَّرَةٍ ۝ بِاَيْدِيْ سَفَرَةٍ ۝ كِرَامٍ بَرَرَةٍ ۝

"यह ऐसे सहीफ़ों में दर्ज है जो मुकर्रम हैं, बुलंद मर्तबा है, पाकीज़ा है, मौअज्ज़ज़ और नेक कातिबों के हाथों में रहते हैं।"
(सूरह अ'बसा)

दर हक़ीकत यह किताब मकनून उन फरिश्तों के पास है, वह तुम्हारी रसाई (पहुँच) से बईद व मा वरा (बहुत दूर) है।
यही बात सूरतुल ज़ुख़रफ में कही गयी है:

وَاِنَّهٗ فِيْٓ اُمِّ الْكِتٰبِ لَدَيْنَا لَعَلِيٌّ حَكِيْمٌ

"यह तो दर हक़ीक़त असल किताब में हमारे पास महफ़ूज़ है, बड़ी बुलंद मर्तबा और हिकमत से लबरेज़ (भरी हुई है)।" (आयत:4)

اُمّ का लफ़्ज़ जड़ और बुनियाद के लिये आता है। इसलिये माँ के लिये भी अरबी में लफ़्ज़ "اُمّ" इस्तेमाल होता है, क्योंकि इसी के बतन से औलाद की विलादत होती है, वह गोया कि बमंज़िले असास है। चुनाँचे इस किताब की असल असास लौहे महफ़ूज़ में है, किताबे मकनून में है। मज़ीद वज़ाहत कर दी गई कि "لَدَيْنَا" यानि वह उम्मुल किताब जो हमारे पास है, उसमें यह क़ुरान दर्ज है। "لَعَلِيٌّ حَكِيْمٌ" इस क़ुरान की सिफ़ात यह हैं कि वह बहुत बुलंद व बाला और हिकमत वाला है, मुस्तहकम है। वह अल्लाह का कलाम और निहायत महफ़ूज़ किताब है। इसे लौहे महफ़ूज़ कहें, किताबे मकनून कहें या उम्मुल किताब कहें, असल कलाम वहाँ है--- उसी आलम-ए-ग़ैब में, उसी आलम-ए-अम्र में--- जिसे सिवाये उन पाक-बाज़ फ़रिश्तों के जिनकी रसाई लौहे महफ़ूज़ तक हो, कोई मस्स (छू) नहीं कर सकता, यानि इस लौहे महफ़ूज़ के मज़ामीन पर मुत्तेलह नहीं हो सकता। अलबत्ता अल्लाह तआला ने इंसानों की हिदायत के लिये मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर अपने इस कलाम की तन्ज़ील फ़रमाई और इसकी इबारत को ता-क़यामे क़यामत तक मुसाहफ़ में महफ़ूज़ फ़रमा दिया और नापाक हाथों से छूने पर मना फ़रमा दिया।

कलामे इलाही की तीन सूरतें

जब मैंने अर्ज़ किया कि क़ुरान अल्लाह का कलाम है तो यहाँ सवाल पैदा होता है कि अल्लाह तआला इंसान से किस तरह हमकलाम होता है! क़ुरान मजीद में इसकी तीन शक्लें बयान हुई हैं।

وَمَا كَانَ لِبَشَرٍ اَنْ يُّكَلِّمَهُ اللّٰهُ اِلَّا وَحْيًا اَوْ مِنْ وَّرَآئِ حِجَابٍ اَوْ يُرْسِلَ رَسُوْلًا فَيُوْحِيَ بِاِذْنِهٖ مَا يَشَآءُ ۭ اِنَّهٗ عَلِيٌّ حَكِيْمٌ ۝

"किसी बशर का यह मक़ाम नहीं है कि अल्लाह उससे रू-ब-रू बात करे। उसकी बात या तो वही (इशारे) के तौर पर होती है, या पर्दे के पीछे से, या फिर वह कोई पैग़म्बर (फ़रिश्ता) भेजता है और वह उसके हुक्म से जो कुछ वह चाहता है वही करता है। यक़ीनन वह बरतर और साहिबे हिकमत है।"
(सूरतुल शौरा)

नोट करने की बात यह है कि यह नहीं फ़रमाया कि अल्लाह के लिये यह मुमकिन नहीं है, अल्लाह तो हर शय पर क़ादिर है, वह जो चाहता है कर सकता है, अल्लाह की क़ुदरत से कोई चीज़ बईद (दूर) नहीं है, बल्कि कहा कि इंसान का यह मक़ाम नहीं है कि अल्लाह उससे बराहे रास्त कलाम करे, किसी बशर का यह मर्तबा नहीं है कि अल्लाह उससे कलाम करे, सिवाये तीन सूरतों के, या तो वही यानि मख़्फ़ी इशारे के ज़रिये से, या पर्दे के पीछे से, या वह किसी रसूल (रसूले मलक) को भेजता है जो वही करता है अल्लाह के हुक्म से जो अल्लाह चाहता है।

अब कलामे इलाही की मज़कूरा तीन शक्लें हमारे सामने आई हैं। इनमें से दो के लिये लफ़्ज़ वही आया है। दरमियान में एक शक्ल "مِنْ وَرَآءِ حِجَابٍ" बयान हुई है। इसका तज़करा सूरतुल आराफ़ की आयत 143 के ज़ेल में हो चुका है। और यह तो अम्र वाक़िया है ही कि हज़रत मूसा अलै० से अल्लाह तआला ने मुतादिद (कई) मौक़ों पर इस सूरत में कलाम फ़रमाया।

पहली मर्तबा हज़रत मूसा अलै० जब आग की तलाश में कोहे तूर पर पहुँचे तो वहाँ मुख़ातबा हुआ। यह मुख़ातबा और मुकालमा-ए-इलाही (बात-चीत) हज़रत मूसा अलै० के साथ "مِنْ وَرَآءِ حِجَابٍ" हुआ था, इसी लिये तो वह आतिशे शौक़ भड़की थी कि:

क्या क़यामत है कि चिलमन से लगे बैठे हैं
साफ छुपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं!

ज़ाहिर है कि जब हम कलाम होने का शर्फ़ हासिल हो रहा है तो एक क़दम और बाक़ी है कि मुझे दीदार भी अता हो जाए, लेकिन यह मुख़ातबा مِنْ وَرَآءِ حِجَابٍ था। नबी अकरम ﷺ से यही मुख़ातबा शबे मेराज में पर्दे के पीछे से हुआ। बाज़ हज़रात की राय है कि हुज़ूर ﷺ को अल्लाह तआला (यानि ज़ाते इलाही) का दीदार हासिल हुआ, लेकिन मेरी राय सलफ़ में से उन हज़रात के साथ है जो इसके क़ायल नहीं हैं। उनमें हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि०) बड़ी अहमियत कि हामिल हैं, उन्होंने हुज़ूर ﷺ से लाज़िमन इन चीज़ों के बारे में इस्तफ़सार किया (पूछा) होगा, चुनाँचे उनकी बात के मुताल्लिक़ तो हम यक़ीन के दर्जे में कह सकते हैं कि वह मुहम्मद रसूल ﷺ से मरफ़ूअ है। हज़रत आयशा (रज़ि०) बयान करतीं हैं कि "نُوْرٌ اَنّٰى يُرٰى؟" यानि अल्लाह तो नूर है, उसे कैसे देखा जा सकता है? (मुस्लिम, किताबुल ईमान, अन अबु ज़र (रज़ि०) नूर तो दूसरी चीज़ों को देखने का ज़रिया बनता है, नूर ख़ुद कैसे देखा जा सकता है! बहरहाल मेरी राय यह कि यह गुफ़्तगू भी مِنْ وَرَآءِ حِجَابٍ थी। वह वराये हिजाब (पर्दे के पीछे से) गुफ़्तगू जो हज़रत मूसा अलै० को कोहे तूर पर मकालमा व मुख़ातबा में नसीब हुई, उस वराये हिजाब मुलाक़ात और गुफ़्तगू (बात-चीत) से अल्लाह तआला ने मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को शबे मेराज में "عِنْدَ سِدْرَةِ الْمُنْتَهٰى" मुशर्रफ़ फ़रमाया।

अलबत्ता वही बराहे रास्त भी है, यानि बग़ैर फ़रिश्ते के वास्ते के। दूसरी क़िस्म की वही फ़रिश्ते के ज़रिये से है और क़ुरान मजीद से जिस बात की तरफ़ ज़्यादा रहनुमाई मिलती है वह यह है कि क़ुरान वही है बवास्ता "मलक"। जैसे क़ुरान मजीद में है:

نَزَلَ بِهِ الرُّوْحُ الْاَمِيْنُ ﴿١٩٣﴾ عَلٰى قَلْبِكَ....

"इसे लेकर आपके दिल पर रूहे अमीन उतरा है..." (अल् शूराअ:194)

और

فَاِنَّهٗ نَزَّلَهٗ عَلٰى قَلْبِكَ

"पस इसे जिब्रील ने ही आपके क़ल्ब पर नाज़िल किया।" (अल् बक़रह:97)

अलबत्ता फ़रिश्ते के बग़ैर वही, यानि दिल में किसी बात का अल्लाह तआला की तरफ़ से बराहे रास्त (सीधा) डाल दिया जाना, यानि "इल्हाम" का ज़िक्र भी हुज़ूर ﷺ ने किया है और इसके लिये हदीस में "نَفَثَ فِى الرَّوْعِ" के अल्फ़ाज़ भी आये हैं। यानि किसी ने दिल में कोई बात डाल दी, किसी ने फूँक मार दी बग़ैर इसके कि कोई आवाज़ सुनने में आई हो। एक कैफ़ियत सिलसिलातुल जर्स की भी थी। हुज़ूर ﷺ को घंटियों की सी आवाज़ आती थी और उसके बाद हुज़ूर ﷺ के क़ल्बे मुबारक पर वही नाज़िल हो जाती थी।

बहरहाल यक़ीन के साथ तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन मेरा गुमाने ग़ालिब है कि दूसरी क़िस्म की वही (बज़रिये फ़रिश्ता) पर पूरे का पूरा क़ुरान मुश्तमिल है। और वही बराहे रास्त यानि "القاء" तो दर हक़ीक़त वही ख़फी है, जिसकी वज़ाहत अंग्रेज़ी के दो अल्फ़ाज़ के दरमियान फ़र्क से बख़ूबी हो जाती है। एक लफ़्ज़ है inspiration और दूसरा revelation, जिसके साथ एक और लफ़्ज़ verbal revelation भी अहम है। Inspiration में एक मफ़हूम, एक ख़्याल या तसव्वुर इंसान के ज़हन व क़ल्ब में आ जाता है, जबकि revelation बाक़ायदा किसी चीज़ के किसी पर reveal किये जाने को कहते हैं। और इसमें भी ईसाईयों के यहाँ एक बड़ी साजिश चल रही है। वह revelation को मानते हैं लेकिन verbal revelation को नहीं मानते, बल्कि उनके नज़दीक सिर्फ़ मफ़हूम ही अम्बिया के क़ुलूब पर नाज़िल किया जाता था, जिसे वह अपने अल्फ़ाज़ में अदा करते थे। जबकि हमारे यहाँ इस बारे में मुस्तक़िल इज्माई (हमेशा से पूरी उम्मत का) अक़ीदा है कि यह अल्लाह का कलाम है जो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर नाज़िल हुआ। यह लफ़्ज़न भी वही है और मायनन भी, लफ़्ज़न भी अल्लाह का कलाम है और मायनन भी, यानि यह verbal revelation है।

इस ज़िमन (बारे) में एक दिलचस्प वाक़िया लाहौर ही में ग़ालिबन एफ़० सी० कॉलेज के प्रिंसिपल और अल्लामा इक़बाल के दरमियान पेश आया था। वह दोनों किसी दावत में इकट्ठे थे कि उन साहब ने हज़रते अल्लामा से कहा कि मैंने सुना है कि आप भी verbal revelation के क़ायल हैं! इस पर अल्लामा ने उस वक़्त जो जवाब दिया वह उनकी ज़हानत पर दलालत करता (सबूत देता) है। उन्होंने कहा कि जी हाँ, मैं verbal revelation को न सिर्फ़ मानता हूँ, बल्कि मुझे तो इसका ज़ाति तजुर्बा हासिल है। चुनाँचे ख़ुद मुझ पर जब शेर नाज़िल होते हैं तो वह अल्फ़ाज़ के जामे में ढ़ले हुए आते हैं, मैं कोई लफ़्ज़ बदलना चाहूँ तो भी नहीं बदल सकता, मालूम होता है कि वह मेरी अपनी तख़्लीक़ नहीं हैं बल्कि मुझ पर नाज़िल किये जाते हैं। तो यह दर हक़ीक़त किसी को जवाब देने का वह अंदाज़ है जिसको अरबी में " الاجوبۃ

"المُسكتة" यानि चुप करा देने वाला जवाब कहा जाता है। यह वह जवाब है जिसके बाद फ़रीक़ सानी के लिये किसी क़ैल व क़ाल का मौका ही नहीं रहता।

बहरहाल कलामे इलाही वाक़िअतन verbal revelation है जिसने अव्वलन क़ौले जिब्रील की शक्ल इख़्तियार की। हज़रत जिब्रील अलै० के जरिये क़ौल की शक़्ल में नाज़िल हुआ। और फिर ज़बाने मुहम्मदी ﷺ की शक़्ल में अदा हुआ। तो यह दर हक़ीक़त revelation है, inspiration नहीं, और महज़ revelation भी नहीं बल्कि verbal revelation है, यानि मायने, मफ़हूम और अल्फ़ाज़ सबके सब अल्लाह तआला की तरफ़ से हैं और यह बहैसियत-ए-मजमूई (पूरे का पूरा) अल्लाह का कलाम है।

(2) क़ुरान का रसूल अल्लाह ﷺ पर नुज़ूल

क़ुरान मजीद के मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर नुज़ूल के ज़िमन (बारे) में भी चन्द बातें नोट कर लें। पहली बहस तो "नुज़ूल" की लग़वी बहस से मुताल्लिक़ है। यह लफ़्ज़ نَزَلَ, يَنْزِلُ सलासी मुजर्रद में भी आता है। तब यह फ़ेअल लाज़िम होता है, यानि "खुद उतरना।" क़ुरान मजीद के लिये इन मायनों में यह लफ़्ज़ क़ुरान में मुतादिद (कईं) बार आया है। मसलन:

وَبِالْحَقِّ اَنْزَلْنٰهُ وَبِالْحَقِّ نَزَلَ

"हमने इस क़ुरान को हक़ के साथ नाज़िल किया है और यह हक़ के साथ नाज़िल हुआ है।" (बनी इस्राइल:105)

यहाँ यह फ़ेअल लाज़िम आ रहा है, यानि नाज़िल हुआ। आम तौर पर फ़ेअल लाज़िम को मुतादी बनाने के लिये इस फ़ेअल के साथ किसी सिला (preposition) का इज़ाफा किया जाता है। चुनाँचे यह फ़ेअल نَزَلَ "بِ" के साथ मुतादी होकर भी क़ुरान मजीद में आया है, बमायने उसने उतारा, जैसे جَاءَ "वह आया" से جَاءَ بِہٖ "वह लाया।" मसलन:

نَزَلَ بِهِ الرُّوْحُ الْاَمِيْنُ ۝ عَلٰى قَلْبِكَ...

"रूहुल अमीन (जिब्रील) ने इस क़ुरान को उतारा है मुहम्मद ﷺ के क़ल्बे मुबारक पर।" (अश शौअरा)

नुज़ूले क़ुरान की दो कैफ़ियतें : इन्ज़ाल और तन्ज़ील

सलासी मज़ीद फ़ीह के दो अबवाब यानि बाबे इफ़्आल और बाबे तफ़्ईल से यह लफ़्ज़ क़ुरान मजीद में बकसरत इस्तेमाल हुआ है। दोनों अबवाब से यह फ़ेअल मुमताददी के तौर पर बमायने "उतारना" इस्तेमाल होता है, यानि اَنْزَلَ, يُنْزِلُ, اِنْزَالًا और نَزَّلَ, يُنَزِّلُ, تَنْزِيلًا। इन दोनों के माबैन फ़र्क यह है कि बाबे इफ़्आल में कोई फ़ेल दफ़्फ़तन और एकदम कर देने के मायने होते हैं जबकि बाबे तफ़्ईल में वही फ़ेल तदरीजन, अहतमाम, तवज्जोह और मेहनत के साथ करने के मायने होते हैं। इन दोनों के माबैन फ़र्क़ को "ईलाम" और "तालीम" के मायने के फर्क़ के हवाले से बहुत ही नुमाया तौर पर और जामियत के साथ समझा जा सकता है। "اِعلام" के मायने हैं बता देना। यानि आपने कोई चीज़ पूछी तो जवाब दे दिया गया। चुनाँचे "Information Office" को अरबी में "मकतबुल ईलाम" कहा जाता है। जबकि "तालीम" के मायने ज़हन नशीन कराना और थोड़ा-थोड़ा करके बताना है। यानि पहले एक बात समझा देना, फिर दूसरी बात उसके बाद बताना और इस तरह दर्जा-ब-दर्जा मुख़ातब के फ़हम की सतह बुलंद से बुलंदतर करना।

अग़रचे क़ुरान मजीद के लिये लफ़्ज़ "इन्ज़ाल" और उससे मुशतक़ मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं, लेकिन बकसरत (ज़्यादातर) लफ़्ज़ "तन्ज़ील" इस्तेमाल हुआ है। क़ुरान मजीद की असल शान तन्ज़ीली शान है, यानि यह कि इसको तदरीजन, रफ़्ता-रफ़्ता, थोड़ा-थोड़ा और नजमन-नजमन नाज़िल किया गया। चुनाँचे क़ुरान मजीद के हुज़ूर ﷺ पर नुज़ूल के लिये सहीतर और ज़्यादा मुस्तमिल लफ़्ज़ क़ुरान हकीम में तन्ज़ील है, ताहम दो मक़ामात पर "لَيْلَةِ الْقَدْرِ" और "لَيْلَةٍ مُّبٰرَكَةٍ" के साथ इन्ज़ाल का लफ़्ज़ आया है। फ़रमाया: {اِنَّآ اَنْزَلْنٰهُ فِيْ لَيْلَةِ الْقَدْرِ} (अल् क़द्र:1) और: {اِنَّآ اَنْزَلْنٰهُ فِيْ لَيْلَةٍ مُّبٰرَكَةٍ} (अल् दुख़ान 3) इसी तरह {شَهْرُ رَمَضَانَ الَّذِيْٓ اُنْزِلَ فِيْهِ الْقُرْاٰنُ} (अल् बक़रह:185) में भी लफ़्ज़ "इन्ज़ाल" इस्तेमाल हुआ है। फिर हुज़ूर ﷺ पर नुज़ूल के लिये भी कहीं-कहीं लफ़्ज़ "इन्ज़ाल" आया है, अग़रचे अकसर व बेशतर लफ़्ज़ "तन्ज़ील" ही आया है। इसकी तक़रीबन मज्मुआ अलय तावील यह है कि पूरा क़ुरान दफ़्फ़तन लौहे महफ़ूज़ से समाये दुनिया तक लैललतुल क़द्र में नाज़िल कर दिया गया, जिसे "लैलाह मुबारका" भी कहा गया है जो कि रमज़ानुल मुबारक की एक रात है। लिहाज़ा जब रमज़ानुल मुबारक की लैललतुल क़द्र

या लैलाह् मुबारक में क़ुरान के नुज़ूल का ज़िक्र हुआ तो लफ़्ज़ इन्ज़ाल इस्तेमाल हुआ। क़ुरान मजीद समाये दुनिया पर एक ही बार मुकम्मल पूरे तौर पर नाज़िल होने के बाद वहाँ से तदरीजन और थोड़ा-थोड़ा करके मुहम्मद रसूल ﷺ पर नाज़िल हुआ। लिहाज़ा हुज़ूर ﷺ पर नुज़ूल के लिये अकसर व बेशतर लफ़्ज़ तन्ज़ील इस्तेमाल हुआ है।

लफ़्ज़ तन्ज़ील के (ज़िमन) बारे में सूरतुल निशा की आयत 136 निहायत अहम है। इर्शाद हुआ:

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْ نَزَّلَ عَلٰي رَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ مِنْ قَبْلُ ۭ

“ऐ ईमान वालो! ईमान लाओ (जैसा कि ईमान लाने का हक़ है) अल्लाह पर और उसके रसूल पर और उस किताब पर भी जो उसने अपने रसूल ﷺ पर नाज़िल फ़रमाई और उस किताब पर भी जो उसने पहले नाज़िल की।”

तौरात तख़्तियों पर लिखी हुई, मकतूब शक्ल में हज़रत मूसा अलै० को दी गई थी। वह चूँकि दफ्फ़तन और जुमलतन वाहिदतन (एक बार में पूरी) दे दी गई, इसलिये इसके लिये लफ़्ज़ इन्ज़ाल आया है, जबकि क़ुरान थोड़ा-थोड़ा करके बाइस-तेईस बरस में नाज़िल हुआ। लिहाज़ा इसी के ज़िमन में लफ़्ज़ “नज़्ज़ला” इस्तमाल हुआ। चुनाँचे ऊपर वाली आयत हैं “तन्ज़ील” और “इन्ज़ाल” एक-दूसरे के बिल्कुल मुक़ाबले में आये हैं। गोया यहाँ “ تُعْرَفُ الْاَشْيَاءُ بِاَضْدَادِهَا” (चीज़ें अपनी अज़्दाद से पहचानी जाती हैं) का उसूल दुरुस्त बैठता है।

हिकमते तन्ज़ील

अब हम यह जानने कि कोशिश करते हैं कि तन्ज़ील की हिकमत क्या है? यह थोड़ा-थोड़ा करके क्यों नाज़िल किया गया और एक ही बार क्यों ना नाज़िल कर दिया गया? क़ुरान मजीद में इसकी दो हिकमतें बयान हुई हैं।

एक तो यह कि लोग शायद इसका तहम्मुल (बरदाशत) ना कर सकते। चुनाँचे लोगों के तहम्मुल की ख़ातिर थोड़ा-थोड़ा करके नाज़िल किया गया ताकि वह इसको अच्छी तरह समझें, इस पर गौर करें और इसे हरज़े जान बनाएँ और इसी के मुताबिक़ उनके ज़हन व फ़िक्र की सतह बुलंद हो। यह हिकमत सूरह बनी इस्राइल की आयत 106 में बयान की गई है:

وَقُرْاٰنًا فَرَقْنٰهُ لِتَقْرَاَهٗ عَلَي النَّاسِ عَلٰي مُكْثٍ وَّنَزَّلْنٰهُ تَنْزِيْلًا ١٠٦؁

“और हमने क़ुरान को टुकड़ों-टुकड़ों में मुन्क़सिम कर दिया ताकि आप थोड़ा-थोड़ा करके और वक़्फे-वक़्फे से लोगों को सुनाते रहें और हमने इसे बतदरीज उतारा।”

इस हिकमत को समझने के लिये बारिश की मिसाल मुलाहिज़ा कीजिये। बारिश अगर एकदम बहुत मूसलाधार हो तो उसमें वह बरकात नहीं होती जो थोड़ी-थोड़ी और तदरीजन होने वाली बारिश में होती है। बारिश अगर तदरीजन हो तो ज़मीन के अंदर जज़्ब होती चली जायेगी, लेकिन अगर मूसलाधार बारिश हो रही हो तो उसका अक्सर व बेशतर हिस्सा बहता चला जायेगा। यही मामला क़ुरान मजीद के इन्ज़ाल व तन्ज़ील का है। इसमें लोगों की मसलहत है कि क़ुरान उनके फ़हम में, उनके बातिन में, उनकी शख़्सियतों में तदरीजन सरायत करता चला जाये। सरायत के हवाले से मुझे फिर अल्लामा इक़बाल का शेर याद आया है:

चूँ बजाँ दर रफ़त जाँ दीग़र शूद
जान चूँ दीगर शद जहाँ दीगर शूद!

“(यह क़ुरान) जब किसी के बातिन में सराहत कर जाता है तो उसके अंदर एक इन्क़लाब बरपा हो जाता है, और जब किसी के अंदर की दुनिया बदल जाती है तो उसके लिये पूरी दुनिया ही इन्क़लाब की ज़द में आ जाती है!”

तो जब यह क़ुरान किसी के अंदर इस तरह उतर जाता है जैसे बारिश का पानी ज़मीन में जज़्ब होता है तो उसकी शख़्सियत में सराहत कर जाता है और उसके सराहत करने के लिये उसका तदरीजन थोड़ा-थोड़ा नाज़िल किया जाना ही हिकमत पर बनी है। लेकिन इससे भी ज़्यादा अहम बात सूरतुल फ़ुरक़ान में कही गयी है, इसलिये कि वहाँ कुफ़्फ़ारे मक्का बिल् ख़ुसूस सरदाराने क़ुरैश का बाक़ायदा एक ऐतराज़ नक़ल हुआ है। फ़रमाया:

وَقَالَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَوْلَا نُزِّلَ عَلَيْهِ الْقُرْاٰنُ جُمْلَةً وَّاحِدَةً ۚ كَذٰلِكَ ۚ لِنُثَبِّتَ بِهٖ فُؤَادَكَ

“मुन्करीन कहते हैं: इस शख़्स पर सारा क़ुरान एक ही वक़्त में क्यों न उतार दिया गया? हाँ ऐसा इसलिये किया गया है कि इसको हम

وَرَتَّلْنٰهُ تَرْتِيْلًا ﴿٣٢﴾ وَلَا يَأْتُوْنَكَ بِمَثَلٍ اِلَّا جِئْنٰكَ بِالْحَقِّ وَاَحْسَنَ تَفْسِيْرًا ﴿٣٣﴾

अच्छी तरह आप (ﷺ) के ज़हेननशीन करते रहें और इसको हमने बग़रज़े तरतील थोड़ा-थोड़ा करके उतारा है। और (इसमें यह मस्लिहत भी है कि) जब कभी वह आपके सामने कोई निराली बात (या अजीब सवाल) लेकर आये, उसका ठीक जवाब बर वक़्त हमने आपको दे दिया और बेहतरीन तरीके से बात खोल दी।"

ऐतराज़ यह था कि यह पूरा क़ुरान एकदम, एक बारगी क्यों नहीं नाज़िल दर दिया गया? इस ऐतराज़ में जो वज़न था, पहले इसको समझ लिजिये। उन्होंने जो बात की दर हक़ीक़त उससे मुराद यह थी कि जैसे हमारा एक शायर दफ़्फ़तन पूरा दीवान लोगों को फ़राहम नहीं कर देता, बल्कि वह एक ग़ज़ल कहता है, क़सीदा कहता है, फिर मज़ीद मेहनत करता है, फिर कुछ और तबा आज़माई करता है, फिर कुछ और कहता है, इस तरह तदरीजन दीवान बन जाता है, इसी तरीके से मुहम्मद (ﷺ) कर रहे हैं। अगर यह अल्लाह का कलाम होता तो पूरा का पूरा एकदम नाज़िल हो सकता था। यह तो दर हक़ीक़त इंसान की कैफ़ियत है कि पूरी किताब दफ़्फ़तन produce नहीं कर देता। पूरा दीवान तो किसी शायर ने एक दिन के अंदर नहीं कहा बल्कि उसे वक़्त लगता है, वह मुसलसल मेहनत करता है, कुछ तकल्लुफ़ भी करता है, कभी आमद भी हो जाती है, लेकिन वह कलाम दीवान की शक़्ल में तदरीजन मदव्वन होता है। तो यह तो इसी तरह की चीज़ है।

لَوْلَا نُزِّلَ عَلَيْهِ الْقُرْاٰنُ جُمْلَةً وَّاحِدَةً

"क्यों नहीं यह क़ुरान इस पर एकदम नाज़िल हो गया?"

अब इसका जवाब दिया गया:

كَذٰلِكَ لِنُثَبِّتَ بِهٖ فُؤَادَكَ

"यह इसलिये किया है ताकि ऐ नबी ﷺ हम इसके ज़रिये से आपके दिल को तस्बीत (जमाव) अता करें।"

यानि वह बात जो आम इंसानों की मस्लिहत में है वह ख़ुद मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के लिये भी मस्लिहत पर मब्नी है कि आपके लिये भी शायद क़ुरान मजीद का एकबारग़ी तहम्मुल करना मुश्किल हो जाता। सूरतुल हश्र के आखिरी रुकू में यह अल्फ़ाज़ वारिद हुए हैं:

لَوْ اَنْزَلْنَا هٰذَا الْقُرْاٰنَ عَلٰى جَبَلٍ لَّرَاَيْتَهٗ خَاشِعًا مُّتَصَدِّعًا مِّنْ خَشْيَةِ اللّٰهِ

"अगर हम पूरे के पूरे क़ुरान को दफ़्फ़तन किसी पहाड़ पर नाज़िल कर देते तो तुम देखते कि वह अल्लाह के ख़ौफ से दब जाता और फट जाता।" (आयत:21)

(नोट कीजिये कि यहाँ लफ़्ज़ "इन्ज़ाल" आया है)। मालूम हुआ कि क़ल्बे मुहम्मदी ﷺ को जमाव और ठहराव अता करने के लिये इसे बतदरीज नाज़िल किया गया है:

وَرَتَّلْنٰهُ تَرْتِيْلًا

"और हमने इसको बग़रज़े तरतील थोड़ा-थोड़ा करके उतारा है।"

"रतल" छोटे पैमाने को, छोटे-छोटे टुकड़े करने को कहते हैं।

अगली आयत में जो इर्शाद हुआ उसके दोनों मफ़हूम हो सकते हैं। एक यह कि ऐ नबी! जो ऐतराज़ भी यह हम पर करेंगे हम उसका बेहतरीन जवाब आपको अता कर देंगे। लेकिन दूसरा मफ़हूम यह भी है कि यह एक मुसलसल कशाकश है जो आपके और मुश्रीकीने अरब के दरमियान चल रही है। आज वह एक बात कहते हैं, अगर उसी वक़्त उसका जवाब दिया जाये तो वह दर हक़ीक़त आपकी दावत के लिये मौज़ूं हैं। अगर यह सारे का सारा कलामे इलाही एक ही मर्तबा नाज़िल हो जाता तो हालात के साथ उसकी मुताबिक़त और उनकी तरफ़ से पेश होने वाले ऐतराज़ात का बर वक़्त जवाब न होता और इसके अंदर जो असर अंदाज़ होने की कैफ़ियत है वह हासिल न होती। इस तदरीज में अपनी जगह मौज़ूनियत है और उसकी अपनी तासीर है। इस ऐतबार से क़ुरान मजीद को तदरीजन नाज़िल किया गया।

क़ुरान करीम का ज़माना-ए-नुज़ूल और अर्ज़े नुज़ूल

रसूल अल्लाह ﷺ पर क़ुरान करीम के नुज़ूल के ज़िमन में अब दो छोटी-छोटी चीज़ें और नोट कर लीजिये। यह सिर्फ मालूमात के ज़िमन में हैं। इसका ज़माना नुज़ूल क्या है? हम जिस हिसाब (सन् ईसवी) से बात करने के आदी हैं, उसी हिसाब से हमारे ज़हन का सुग़रा-कबरा बना हुआ है। इस ऐतबार से नोट कर लीजिये कि क़ुरान हकीम का ज़माना-ए-नुज़ूल 610 ई०

से 632 ई० तक 22 बरस पर मुश्तमिल है। क़मरी हिसाब से यह 23 बरस बनेंगे। 40 आमुल फ़ील से शुरू करें तो 12 साल क़ब्ले हिजरत और 11 हिजरी साल मिलकर 23 साल क़मरी बनेंगे। जिनके दौरान यह क़ुरान बतर्ज़े तन्ज़ील थोड़ा-थोड़ा करके नाज़िल हुआ। सही हदीसों में यह शहादत मौजूद है कि पहले सूरह अलक़ की पाँच आयतें नाज़िल हुई, फिर तीन साल का वक़्फ़ा आया। सूरह अलक़ की यह पाँच आयात भी चूँकि क़ुरान मजीद का हिस्सा हैं, लिहाज़ा सही क़ौल यही है कि क़ुरान हकीम का ज़माना-ए-नुज़ूल 23 क़मरी या 22 शम्सी साल है।

अब यह कि नुज़ूल की जगह कौनसी है? इस ज़िमन में सिर्फ़ एक लफ़्ज़ नोट कर लीजिये कि तक़रीबन पूरे का पूरा क़ुरान "हिजाज़" में नाज़िल हुआ। इसलिये कि अग़ाज़े वही के बाद हुज़ूर अकरम ﷺ का कोई सफ़र हिजाज़ से बाहर साबित नहीं है। अग़ाज़े वही से क़ब्ल आप ﷺ ने मुतादिदद सफ़र किये हैं। आप ﷺ शाम का सफ़र करते थे, यक़ीनन यमन भी आप ﷺ जाते होंगे। इसलिये कि अल्फ़ाज़े क़ुरानी "رِحۡلَةَ الشِّتَآءِ وَالصَّيۡفِ" की रू से क़ुरैश के सालाना दो सफ़र होते थे। गर्मियों के मौसम में शिमाल की तरफ़ जाते थे, इसलिये कि फ़लस्तीन का इलाक़ा निस्बतन ठंडा है, और सर्दियों के मौसम में वह जुनूब की तरफ़ (यमन) जाते थे, इसलिये कि वह गर्म इलाक़ा है। तो हुज़ूर अकरम ﷺ ने भी तिजारती सफ़र किये हैं। बाज़ मुहक़्क़ीन ने तो यह इम्कान भी ज़ाहिर किया है कि आप ﷺ ने उस ज़माने में कोई बेहरी सफ़र भी किया और ग़ल्फ़ को उबूर करके मकरान के साहिल पर किसी जगह आप ﷺ तशरीफ़ लाये। (वल्लाहु आलम!) यह बात मैंने डाक्टर हमीदुल्लाह साहब के एक लेक्चर में सुनी थी जो उन्होंने हैदराबाद (सिन्ध) में दिया था, लेकिन बाद में इस पर जिरह हुई कि यह बहुत ही कमज़ोर क़ौल है और इसके लिये कोई सनद मौजूद नहीं है। अलबत्ता "अल् ख़बर" जहाँ आज आबाद है वहाँ पर तो हर साल एक बहुत बड़ा तिजारती मेला लगता था और हुज़ूर ﷺ का वहाँ तक आना साबित है। बहरहाल आपको मालूम है कि हुज़ूर ﷺ आग़ाज़े वही के बाद दस साल तक तो मक्का मुकर्रमा में रहे, इसके बाद ताईफ़ का सफ़र किया है। फिर आस-पास "अकाज़" का मेला लगता था और मंडियाँ लगती थीं, उनमें आपने सफ़र किये हैं। फिर आप ﷺ ने मदीना मुनव्वरा हिजरत फ़रमाई। इसके बाद सब जंगें हिजाज़ के इलाक़े ही में हुईं, सिवाये ग़जव-ए-तबूक के। लेकिन तबूक भी असल में हिजाज़ ही का शिमाली सिरा है, इस ऐतबार से हिजाज़ ही का इलाक़ा है जिसमें क़ुरान करीम नाज़िल हुआ था। ताहम दो आयतें इस ऐतबार से मुस्तसना क़रार दी जा सकती हैं कि वह ज़मीन पर नहीं बल्कि आसमान पर नाज़िल हुईं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) से सही मुस्लिम में रिवायत मौजूद है कि शबे मेराज में अल्लाह तआला ने आप ﷺ को जो तीन तोहफ़े अता किये उनमें नमाज़ की फ़र्ज़ियत और दो आयाते क़ुरानी शामिल हैं। यह सूरतुल बक़रह की आख़िरी दो आयात हैं जो अर्श के दो ख़जाने हैं जो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को शबे मेराज में अता हुए। तो यह दो आयतें मुस्तसना हैं कि यह ज़मीन पर नाज़िल नहीं हुईं बल्कि आप ﷺ को सिद्रतुल मुन्तहा पर दी गयीं और ख़ुद आप ﷺ सातवें आसमान पर थे, जबकि बाक़ी पूरा क़ुरान आसमान से ज़मीन पर नाज़िल हुआ है। जियोग्राफयाई ऐतबार से हिजाज़ का इलाक़ा महबत वही है।

(3) क़ुरान हकीम की महफ़ूजियत

मैंने अर्ज़ किया था कि क़ुरान के बारे में तीन बुनियादी और ऐतक़ादी (विश्वासी) चीज़ें हैं: अव्वल, यह अल्लाह का कलाम है दूसरा, यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर नाज़िल हुआ। तीसरा, यह मन व अन कुल का कुल महफ़ूज़ है। इसमें ना कोई कमी हुई है ना कोई बेशी हुई है। ना कमी हो सकती है ना बेशी हो सकती है। ना कोई तहरीफ़ हुई है न कोई तब्दीली। यह गोया हमारे अक़ीदे (विश्वास) का जुज़्वे ला यन्फक (वह हिस्सा जो कभी छोड़ा नहीं जा सकता) है। इसमें कुछ इश्तबा (शक) अहले तशय्यो (शिया लोगों) ने पैदा किया है, लेकिन उनकी बात भी मैं कुछ यक़ीन के साथ इसलिये नहीं कह सकता कि उनका यह क़ौल भी सामने आता है कि "हम इस क़ुरान को महफ़ूज़ मानते हैं।" अलबत्ता अवाम में जो चीज़ें मशहूर हैं कि क़ुरान से फ़लाह आयात निकाल दी गईं, फ़लाह सूरत हज़रत अली (रज़ि०) की मदह या शान में थीं, वह इसमें से निकाल दी गई वग़ैरह, उनके बारे में मैं नहीं कह सकता कि यह उनमें से अवाम का ला नाम की बातें हैं या उनके ऐताक़ादात (विश्वास) में शामिल हैं। लेकिन यह कि बहरहाल अहले सुन्नत का इज्माई अक़ीदा (पूरी उम्मत इस पर सहमत) है कि यह क़ुरान हकीम महफ़ूज़ है और कुल का कुल मन व अन हमारे सामने मौज़ूद है। इसके लिये ख़ुद क़ुरान मजीद से जो

गवाही मिलती है वह सबसे ज़्यादा नुमायां (साफ़) होकर सूरतुल क़ियामा में आई है। फ़रमाया:

لَا تُحَرِّكْ بِهٖ لِسَانَكَ لِتَعْجَلَ بِهٖ ۝ اِنَّ عَلَيْنَا جَمْعَهٗ وَقُرْاٰنَهٗ ۝

रसूल अल्लाह ﷺ को अल्लाह तआला ने अज़राहे शफ़क़त (प्यार से) फ़रमाया: "आप इस क़ुरान को याद करने के लिये अपनी ज़बान को तेजी से हरकत न दें। इसको याद करवा देना और पढ़वा देना हमारे ज़िम्मे है।" आप ﷺ मुशक्क़त (तकलीफ) न झेलें, यह ज़िम्मेदारी हमारी है कि हम इसे आप ﷺ के सीने मुबारक के अंदर जमा कर देंगे और इसकी तरतीब क़ायम कर देंगे, इसको पढ़वा देंगे। जिस तरतीब से यह नाज़िल हो रहा है उसकी ज़्यादा फ़िक्र न कीजिये। असल तरतीब जिसमें इसका मुरतब्ब किया जाना हमारे पेश नज़र है, जो तरतीब लौहे महफ़ूज़ की है उसी तरतीब से हम पढ़वा देगें। { ثُمَّ اِنَّ عَلَيْنَا بَيَانَهٗ ۝ } फिर अग़र आपको किसी चीज़ में इब्हाम महसूस हो और वज़ाहत (समझाने) की ज़रुरत हो तो इसकी तौज़ीह और तद्वीन भी हमारे ज़िम्मे है।

यह सारी ज़िम्मेदारी अल्लाह तआला ने ख़ुद अपने ऊपर ली है। अगर इन आयात को कोई शख्स क़ुरान मजीद की आयात मानता है तो उसको मानना पड़ेगा कि क़ुरान मजीद पूरे का पूरा जमा है, इसका कोई हिस्सा ज़ाया नहीं हुआ। सराहत के साथ यह बात सूरह अल् हिज्र की आयत 9 में मज़कूर है। फरमाया:

اِنَّا نَحْنُ نَزَّلْنَا الذِّكْرَ وَاِنَّا لَهٗ لَحٰفِظُوْنَ

"हमने ही इस 'अल् ज़िक्र' को नाज़िल किया है और हम ही इसकी हिफ़ाज़त करने वाले हैं।"

यह गोया हमेशा-हमेश के लिये अल्लाह तआला की तरफ़ से गारंटी है कि हमने इसे नाज़िल किया और हम ही इसके मुहाफ़िज़ हैं। इस हक़ीक़त को अल्लामा इक़बाल ने ख़ूबसूरत शेर में बयान किया है:

हर्फ़े ऊ रा रैब ने, तब्दील ने
आय इश शर्मिंदा तावील ने

"इसके अल्फ़ाज़ में ना किसी शक व शुबह का शायबा है न रद्दो-बदल की गुंजाईश। और इसकी आयत किसी तावील की मोहताज़ नहीं।"

इस शेर में तीन ऐतबारात से नफी की गई है: (1) क़ुरान के हुरूफ़ में यानि इसके मतन में कोई शक़ व शुबह की गुंजाइश नहीं। यह मिन व अन महफ़ूज़ है। (2) इसमें कहीं कोई तहरीफ़ (परिवर्तन) हुई हो, कहीं तब्दीली की गयी हो, क़तअन ऐसा नहीं। (3) क्या इसकी आयात की उलट-पुलट तावील भी की जा सकती है? नहीं! यह आख़िरी बात बज़ाहिर बहुत बड़ा दावा मालूम होता है, इसलिये कि तावील के ऐतबार से क़ुरान मजीद के मायने में लोगों ने तहरीफ़ की, लेकिन वाक़्या यह है कि क़ुरान मजीद में अगर कहीं माअन्वी तहरीफ़ की कोशिश भी हुई है तो वह क़तअन दर्जा-ए-इस्तनाद को नहीं पहुँच सकी, उसे कभी भी इस्तक़लाल और दवाम हासिल नहीं हो सका, क़ुरान ने ख़ुद उसको रद्द कर दिया। जिस तरह दूध में से मक्ख़ी निकाल कर फेंक दी जाती है, ऐसी ही तावीलात भी उम्मत की तारीख़ के दौरान कहीं भी जड़ नहीं पकड़ सकी है और इसी तरह निकाल दी गई हैं। इस बात की सनद भी क़ुरान में मौजूद है। सूरह हा मीम सजदा की आयत 42 में है:

لَّا يَاْتِيْهِ الْبَاطِلُ مِنْۢ بَيْنِ يَدَيْهِ وَلَا مِنْ خَلْفِهٖ ۭ تَنْزِيْلٌ مِّنْ حَكِيْمٍ حَمِيْدٍ

"बातिल इस (क़ुरान) पर हमलावर नहीं हो सकता, ना सामने से ना पीछे से, यह एक हकीम व हमीद की नाज़िल करदा चीज़ है।"

यह बात सिरे से ख़ारिज अज़ इम्कान (मुमकिन ही नहीं) है कि इस क़ुरान में कोई तहरीफ़ (परिवर्तन) हो जाये, इसका कोई हिस्सा निकाल दिया जाये, इसमें कोई ग़ैर क़ुरान शामिल कर दिया जाये। सूरतुल हाक़्क़ा की यह आयात मुलाहिज़ा कीजिये जहाँ गोया इस इम्कान की नफ़ी में मुबालगे का अंदाज़ है:

وَلَوْ تَقَوَّلَ عَلَيْنَا بَعْضَ الْاَقَاوِيْلِ ۝ لَاَخَذْنَا مِنْهُ بِالْيَمِيْنِ ۝ ثُمَّ لَقَطَعْنَا مِنْهُ الْوَتِيْنَ ۝ فَمَا مِنْكُمْ مِّنْ اَحَدٍ عَنْهُ حٰجِزِيْنَ ۝

"(कोई और तो इसमें इज़ाफा क्या करेगा) अगर यह (हमारे नबी मुहम्मद ﷺ) ख़ुद भी (बफ़र्ज़े महाल) अपनी तरफ़ से कुछ गढ़ कर इसमें शामिल कर दें तो हम इन्हें दाहिने हाथ से पकड़ेंगे और इनकी शह रग़ काट देंगे। फिर तुम में से कोई (बड़े से बड़ा मुहाफ़िज़ व मददगार) नहीं होगा कि जो उन्हें हमारी पकड़ से बचा सके।"

यहाँ तो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के लिये भी इस शिद्दत के साथ नफ़ी कर दी गयी है। कुफ़्फ़ारे मुश्रिकीन की तरफ़ से मुतालबा किया जाता था कि आप इस क़ुरान में कुछ नरमी और लचक दिखायें यह तो बहुत rigid है, बहुत ही uncompromising है, बहरहाल दुनिया में मामलात "कुछ लो कुछ दो"

(give and take) से तय होते हैं, लिहाज़ा कुछ आप नरम पड़ें कुछ हम नरम पड़ते हैं। इसके बारे में फ़रमाया: (अल् क़लम, आयत:9)

وَدُّوْا لَوْ تُدْهِنُ فَيُدْهِنُوْنَ

“वह तो चाहते हैं कि आप कुछ ढ़ीले हो जायें तो यह भी ढ़ीले हो जायेंगे।”

और सूरह यूनुस में इर्शाद हुआ:

وَاِذَا تُتْلٰى عَلَيْهِمْ اٰيَاتُنَا بَيِّنٰتٍ ۙ قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَرْجُوْنَ لِقَآءَنَا ائْتِ بِقُرْاٰنٍ غَيْرِ هٰذَآ اَوْ بَدِّلْهُ ؕ قُلْ مَا يَكُوْنُ لِيْٓ اَنْ اُبَدِّلَهٗ مِنْ تِلْقَآئِ نَفْسِيْ ۚ اِنْ اَتَّبِعُ اِلَّا مَا يُوْحٰٓى اِلَيَّ ۚ اِنِّيْٓ اَخَافُ اِنْ عَصَيْتُ رَبِّيْ عَذَابَ يَوْمٍ عَظِيْمٍ ⑮

“जब उन्हें हमारी आयाते बय्यिनात सुनाई जाती हैं तो वह लोग जो हमसे मिलने की तवक़्क़ो नहीं रखते, कहते हैं कि इस क़ुरान के बजाये कोई और क़ुरान लायें या इसमें कुछ तरमीम कीजिये। (ऐ नबी!इनसे) कह दीजिए मेरे लिये हर्गिज़ मुमकिन नहीं है कि मैं अपने ख़्याल और इरादे से इसके अंदर कुछ तब्दीली कर सकूँ। मैं तो ख़ुद पाबंद हूँ उसका जो मुझ पर वही किया जाता है। अगर मैं अपने रब की नाफ़रमानी करूँ तो मुझे एक बड़े हौलनाक दिन के अज़ाब का डर है।”

यह है क़ुरान मजीद की शान कि यह लफ़्ज़न, मायनन, मतनन कुल्ली तौर पर (हर तरह से) महफ़ूज़ है।

❀ ❀ ❀

<u>बाब दोम (दूसरा)</u>

चन्द मुतफ़र्रिक़ मुबाहिस

क़ुरान मजीद की ज़बान

अब आईये अगली बहस की तरफ़ कि क़ुरान मजीद की ज़बान क्या है और इस ज़बान की शान क्या है। यह बात भी क़ुरान मजीद ने बहुत तकरार और इआदह (दोहराना) के साथ बयान की है कि यह क़ुरान अरबी मुबीन में है, यानि सस्ता, साफ़, सलीस, खुली और वाज़ेह अरबी में है।

क़ुरान मजीद अल्लाह का कलाम है। इसने जिन हुरूफ़ व अस्वात (आवाज़) का जामा पहना वह हुरूफ़ व अस्वात लौहे महफ़ूज़ में हैं। इसके बाद वह कलामे इलाही, क़ौले जिब्रील अलै० और क़ौले मुहम्मद ﷺ बनकर नाज़िल हुआ और लोगों के सामने आया। चुनाँचे सूरह अल् ज़ुख़रुफ़ के आग़ाज़ में इर्शाद हुआ:

حٰمٓ ۚ ① وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۙ ② اِنَّا جَعَلْنٰهُ قُرْءٰنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۚ ③

“हा, मीम। क़सम है इस वाज़ेह किताब की! हमने इसे क़ुराने अरबी बनाया है ताकि तुम समझ सको।”

क़ुरान की मुख़ातिब अव्वल क़ौम हिजाज़ में आबाद थी। उससे कहा जा रहा है कि हमने इस क़ुरान को तुम्हारी ज़बान में बनाया। उसने अव्वलन हुरूफ़ व अस्वात का जामा पहना है, फिर तुम्हारी ज़बान अरबी का जामा पहनकर तुम्हारे सामने नाज़िल किया गया है ताकि तुम इसको समझ सको। यही बात सूरह यूसुफ़ के शुरू में कही गयी है:

الٓرٰ ۣ تِلْكَ اٰيٰتُ الْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۣ ① اِنَّآ اَنْزَلْنٰهُ قُرْءٰنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ②

“अलिफ़, लाम, रा। यह उस किताब की आयात है जो अपना मदअन साफ़-साफ़ बयान करती है। हमने इसे नाज़िल किया है क़ुरान बनाकर अरबी ज़बान में ताकि तुम समझ सको।”

सूरह अल् शौरा में फ़रमाया:

بِلِسَانٍ عَرَبِيٍّ مُّبِيۡنٍ ۝

“साफ़-साफ़ अरबी ज़बान में (नाज़िल किया गया)।”

सूरह अल् ज़ुमुर में इर्शाद फ़रमाया:

قُرۡاٰنًا عَرَبِيًّا غَيۡرَ ذِىۡ عِوَجٍ لَّعَلَّهُمۡ يَتَّقُوۡنَ ۝

“ऐसा क़ुरान जो अरबी ज़बान में है, जिसमें कोई टेढ़ नहीं है, ताकि वह बच कर चलें।”

इसमें कहीं कजी नहीं, कहीं कोई ऐच-पेच नहीं, इसकी ज़बान बहुत सलीस, सस्ता और बिलकुल वाजेह ज़बान है। इसमें कहीं पहेलियाँ बुझवाने का अंदाज़ नहीं है।

अब नोट कीजिये कि क़ुरान की अरबी कौनसी अरबी है? इसलिये कि अरबी ज़बान एक है मगर इसके dialects और इसकी बोलियाँ बेशुमार है। खुद जज़ीरा नुमाए अरब में कई बोलियाँ थीं, तलफ्फ़ुज़ और लहजे मुख़तलिफ़ थे। बाज़ अल्फ़ाज़ किसी ख़ास इलाक़े में मुस्तमिल थे और दूसरे इलाक़े के लोग उन अल्फ़ाज़ को जानते ही नहीं थे। आज भी कहने को तो मिश्र, लीबिया, अल् जज़ाइर, मुरतानिया और हिजाज़ की ज़बान अरबी है, लेकिन उनके यहाँ जो फ़सीह अरबी कहलाती है वह तो एक ही है। वह दरहक़ीक़त एक इसलिये है कि क़ुरान मजीद ने उसे दवाम अता किया है। यह क़ुरान मजीद का अरबी ज़बान पर अज़ीम अहसान है। इसलिये कि दुनिया में दूसरी कोई ज़बान भी ऐसी नहीं है जो चौदह सौ बरस से एक ही शान और एक ही कैफ़ियत के साथ बाकी हो। उर्दू ज़बान ही को देखिये 100-200 बरस पुरानी उर्दू आज हमारे लिये नाक़ाबिले फ़हम है। दक्कन की उर्दू हमें समझ नहीं आ सकती, इसमें कितनी तब्दीली हुई है। इसी तरह फ़ारसी ज़बान का मामला है। एक वह फ़ारसी थी जो अरबों की आमद और इस्लाम के ज़ुहूर के वक़्त थी। अरबों के हाथों ईरान फ़तह हुआ तो रफ़्ता-रफ़्ता उस फ़ारसी का रंग बदलता गया। अब उसको फिर बदला गया है और उसमें से अरबी अल्फ़ाज़ को निकाल कर उसके लहजे भी बदल दिये गये हैं। एक फ़ारसी वह है जो अफ़ग़ानिस्तान में बोली जाती है, वह हमारी समझ में आती है। इसलिये कि जो फ़ारसी यहाँ पढ़ाई जाती थी वह यही फ़ारसी थी। आज जो फ़ारसी ईरान में पढ़ाई जा रही है वह बहुत मुख़्तलिफ़ है, अपने लहजे में भी और अपने अल्फ़ाज़ के ऐतबार से भी। लेकिन अरबी “फ़सीह ज़बान” एक है। यह असल में हिजाज़ के बद्दुओं की ज़बान थी। पूरा क़ुरान हकीम हिजाज़ में नाज़िल हुआ। हजाज़ में बादिया नशीन थे। अरबों का कहना है कि ख़ालिस ज़बान बादिया नशीनों की है, शहर वालों की नहीं। जबकि मक्का शहर था और वहाँ बाहर से भी लोग आते रहते थे। क़ाफिले आ रहे हैं, जा रहे हैं, ठहर रहे हैं। जहाँ इस तरह आमद व रफ्त हो वहाँ ज़बान ख़ालिस नहीं रहती और उसमें ग़ैर ज़बानों के अल्फ़ाज़ शामिल होकर मुस्तमिल हो जाते हैं और बोल-चाल में आ जाते हैं। ख़ास इसी वजह से मक्का के शरफ़ा अपने बच्चों को पैदाइश के फ़ौरन बाद बादिया नशीनों के पास भेज देते थे। एक तो दूध पिलाने का मामला था। दूसरा यह कि उनकी ज़बान साफ़ रहे, ख़ालिस अरबी ज़बान रहे और वह हर मिलावट से पाक रहे। तो क़ुरान मजीद हिजाज़ के बादिया नशीनों की ज़बान में नाज़िल हुआ।

अलबत्ता यह साबित है कि क़ुरान मजीद में कुछ अल्फ़ाज़ दूसरे क़बाइल और दूसरे इलाक़ों की ज़बानों के भी आये हैं। अल्लामा जलालुद्दीन स्यूती रहि० ने ऐसे अल्फ़ाज़ की फेहरिस्त मुरत्तब (लिस्ट बनाई है) की है। इसके अलावा कुछ ग़ैर अरबी अल्फ़ाज़ भी क़ुरान मजीद में आये हैं जो मौरब हो गये हैं। इब्राहीम, इस्माईल, इस्राईल, इस्हाक़ यह तमाम नाम दरहक़ीक़त अबरानी ज़बान के अल्फ़ाज़ हैं। लफ़्ज़ “ईल” अबरानी ज़बान में अल्लाह के लिये आता है और यह लफ़्ज़ हमारे यहाँ क़ुरान मजीद के ज़रिये आया है। इसी तरीके से “सिज्जील” का लफ़्ज़ फ़ारसी से आया है। सहरा में कहीं बारिश के नतीजे में हल्की सी फुहार पड़ी हो तो बारिश के क़तरों के साथ रेत के छोटे-छोटे दाने बन जाते हैं और फिर तेज़ धूप पड़ने पर ऐसे पक जाते हैं जैसे भट्टे में ईंटो को पका दिया गया हो। यह कंकर “सिज्जील” कहलाते हैं जो “संगे गुल” का मौरब है। बाक़ी अक्सर व बेशतर क़ुरान मजीद की ज़बान जिसमें यह नाज़िल हुआ, वह हिजाज़ के इलाक़े के बादिया नशीनों की अरबी है, जिसमें फ़साहत व बलाग़त नुक़्ता-ए-उरूज पर है और इसका लोहा माना गया है।

इसके अलावा क़ुरान मजीद में एक सौती आहंग है। इसका एक “मलकूती गिना” (Divine Music) है, इसकी एक अज़ूबत और मिठास है। यह दोनों चीज़ें अरब में पूरे तौर पर तस्लीम की गई हैं और लोगों पर सबसे ज़्यादा मरऊबियत (पसंद) क़ुरान हकीम की फ़साहत, बलाग़त और अज़ूबित ही से तारी हुई है। उनकी अपनी ज़बान में होने के ऐतबार से ज़ाहिर बात है कि क़ुरान के बेहतरीन नाक़द भी वही हो सकते थे। वाज़ेह रहे कि अदब में “तन्क़ीद” दोनों पहलुओं को मुहीत होती है। किसी चीज़ की क़द्र व क़ीमत का अंदाज़ा लगाना, उसे जाँचना, परखना। उसमें कोई ख़ामी हो तो उसको

नुमाया करना, और अगर कोई मुहासिन हो तो उनको समझना और बयान करना। इस ऐतबार से इसकी फ़साहत व बलाग़त को तस्लीम किया गया है।

मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि अरबी ज़बान आज भी मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में मुख़्तलिफ़ लहजों और बोलियों की शक़्ल इख़्तियार कर चुकी है। एक इलाक़े की आमी (colloquial) रबी दूसरे लोगों की समझ में नहीं आती थी। ख़ुद नुज़ूले क़ुरान के ज़माने में नजद के लोगों की ज़बान हिजाज़ के लोगों की समझ में नहीं आती थी। इसकी वज़ाहत एक हदीस में भी मिलती है कि नजद से कुछ लोग आए और वह हुज़ूर ﷺ से ग़ुफ़्तगु कर रहे थे जो बड़ी मुश्किल से समझ में आ रही थी और लोग उसे समझ नहीं पा रहे थे। आज भी नजद के लोग जो गुफ़्तगु करते हैं तो वाक़िया यह है कि अरबी से वाक़फ़ियत (जानने) होने के बावजूद उनकी अरबी हमारी समझ में नहीं आती, उनका लबो लहजा बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है। क़ुरान हकीम की ज़बान हिजाज़ के बादिया नशीनों की है। लिहाज़ा अगर तहक़ीक़ व तदब्बुर क़ुरान का हक़ अदा करना हो तो जाहिलियत की शायरी पढ़ना ज़रूरी है। अइम्मा-ए-लुग़त (Master of language) ने एक-एक लफ़्ज़ की तहक़ीक़ करके और बड़ी गहराईयों में उतर कर जाहिली शायरी के हवाले से जितने भी इस्तशहाद (प्रमाण) हो सकते थे उनको ख़ंगाल कर क़ुरान में मुस्तमिल अल्फ़ाज़ के माद्दों के मफ़हूम मुअय्यन (अर्थ बता दिये) कर दिये हैं। एक आम क़ारी को, जो क़ुरान से तज़क्कुर करना चाहे, सिर्फ़ हिदायत हासिल करना चाहे, इस झगड़े में पड़ने की चंदान ज़रूरत नहीं है। अलबत्ता तदब्बुर क़ुरान के लिये जब तहक़ीक़ की जाती है तो जब तक किसी एक लफ़्ज़ की असल पूरी तरह मालूम न की जाए और उसके बाल की ख़ाल न उतार ली जाए तहक़ीक़ का हक़ अदा नहीं होता। इस ऐतबार से शेर जाहिली की ज़बान को समझना तदब्बुर क़ुरान के लिये यक़ीनन ज़रूरी है।

क़ुरान के अस्मा व सिफ़ात

अगली बहस क़ुरान हकीम के अस्मा (नाम) व सिफ़ात (गुणों) की है। अल्लाम जलालुद्दीन स्यूति रहि० ने अपनी शहरा आफ़ाक़ किताब "अल् इत्तेफाक़ फ़ी उलूमुल क़ुरान" में क़ुरान हकीम के अस्मा व सिफ़ात क़ुरान हकीम ही से लेकर पचपन (55) नामों की फ़ेहरिस्त मुरत्तब (तैयार) की है। मैंने जब इस पर ग़ौर किया तो अंदाज़ा हुआ कि वह भी कामिल नहीं है, मसलन लफ़्ज़ "बुरहान" उनकी फ़ेहरिस्त में शामिल नहीं है। दरहक़ीक़त (असल में) क़ुरान मजीद की सिफ़ात, इसकी शानों और इसकी तासीर के लिये मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ को जमा किया जाये तो 55 ही नहीं इससे ज़्यादा अल्फ़ाज़ बन जायेंगे। लेकिन मैंने इन्हें दो हिस्सों में तक़सीम किया है। एक तो वह अल्फ़ाज़ हैं जो मुफ़रद की हैसियत से और मारफ़ा की शक्ल में क़ुरान मजीद में क़ुरान के लिये वारिद हुए हैं, जबकि कुछ सिफ़ात हैं जो मौसूफ़ के साथ आ रही हैं। मसलन "क़ुरान मजीद" में "मजीद" क़ुरान का नाम नहीं है, दरहक़ीक़त सिफ़त है। इसी तरह "अल् क़ुरान अल् मजीद" में अग़रचे "अलिफ़ लाम" के साथ "अल् मजीद" आता है, लेकिन यह चूँकि मौसूफ़ के साथ मिल कर आया है लिहाज़ा यह भी सिफ़त है।

क़ुरान माजीद के लिये जो अल्फ़ाज़ बतौर-ए-इस्म आये हैं, उनमें से अक्सर व बेशतर वह हैं जिनके साथ लाम लगा है। क़ुरान के लिये अहमतरीन नाम जो इसका इम्तियाज़ी (विशेष) और इख़्तसासी (The Exclusive) नाम है, "अल् क़ुरान" है। (मैं बाद में इसकी वज़ाहत करूँगा) इसके बाद कसरत से इस्तेमाल होने वाला नाम "अल् किताब" है। क़ुरान की असल हक़ीक़त पर रोशनी डालने वाला अहमतरीन नाम "अल् ज़िक्र" है। क़ुरान मजीद की इफ़ादियत के लिये सबसे ज़्यादा जामेअ नाम "अल् हुदा" है। क़ुरान मजीद की नौइयत और हैसियत के ऐतबार से अहम तरीन नाम "अल् नूर" है। क़ुरान मजीद की एक इन्तहाई अहम शान जो एक लफ़्ज़ के तौर पर आई है "अल् फ़ुरक़ान" है यानि (हक़ व बातिल में) फ़र्क कर देने वाली शय, दूध का दूध और पानी का पानी जुदा कर देने वाली शय। क़ुरान का एक नाम "अल् वही" भी आया है: {قُلْ اِنَّمَآ اُنْذِرُكُمْ بِالْوَحْيِ} (अल् अम्बिया:45)। इसी तरह "कलामुल्लाह" का लफ़्ज़ भी ख़ुद क़ुरान में आया है: {حَتّٰى يَسْمَعَ كَلٰمَ اللّٰهِ} (अत् तौबा:6) चूँकि यहाँ कलाम मुदाफ़ वाक़ेअ हुआ है, लिहाज़ा यह भी मआरफा बन गया। मेरे नज़दीक जिन्हें हम क़ुरान के नाम क़रार दें, वह तो यही बनते हैं। अग़रचे, जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, जो लफ़्ज़ भी क़ुरान के लिये सिफ़त के तौर पर या इसकी शान को बयान करने के लिये क़ुरान में आ गया है अल्लामा जलालुद्दीन स्यूती रहि० ने उसको फ़ेहरिस्त में शामिल करके 55 नाम गिनवाये हैं, लेकिन यह फ़ेहरिस्त भी मुकम्मल नहीं।

क़ुरान करीम की मुख़्तलिफ़ शानों और सिफ़ात के लिये यह अल्फ़ाज़ आए हैं:

1)	करीमुन	اِنَّهٗ لَقُرْاٰنٌ كَرِيْمٌ	(अल् वाक़्या:77)
2)	अल् हकीम	يٰسٓ ۝ وَالْقُرْاٰنِ الْحَكِيْمِ	(यासीन:1-2)
3)	अल् अज़ीम	وَلَقَدْ اٰتَيْنٰكَ سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِيْ وَالْقُرْاٰنَ الْعَظِيْمَ	(अल् हिज्र:87)
4)	मजीदुन और अल् मजीद	بَلْ هُوَ قُرْاٰنٌ مَّجِيْدٌ और قٓ وَالْقُرْاٰنِ الْمَجِيْدِ	(अल् बुरूज:21) (क़ाफ़:1)
5)	अल् मुबीन	حٰمٓ ۝ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ	(अल् ज़ुख़रुफ़:1-2)
6)	रहमतुन	هُدًى وَّرَحْمَةٌ لِّلْمُؤْمِنِيْنَ	(यूनुस:57)
7)	अलिय्युन	وَاِنَّهٗ فِيْٓ اُمِّ الْكِتٰبِ لَدَيْنَا لَعَلِيٌّ حَكِيْمٌ	(अल् ज़ुख़रुफ़:4)
8)	बसाइर	قَدْ جَاۗءَكُمْ بَصَاۗىِٕرُ مِنْ رَّبِّكُمْ	(अल् अनआम:104)
9,10)	बशीरुन व नज़ीरुन	بَشِيْرًا وَّنَذِيْرًا	(हा मीम सज्दा:4)

[अगरचे यह अल्फ़ाज़ अम्बिया के लिये आते हैं लेकिन यहाँ ख़ुद क़ुरान के लिये भी आये हैं। क़ुरान अपनी ज़ात में फ़ी नफ़्सी बशीर भी है, नज़ीर भी है]

11)	बुशरा	وَبُشْرٰى لِلْمُسْلِمِيْنَ	(अल् नहल:89, 102)
12)	अज़ीज़ुन	وَاِنَّهٗ لَكِتٰبٌ عَزِيْزٌ	(हा मीम सज्दा:41)
13)	बलाग़ुन	هٰذَا بَلٰغٌ لِّلنَّاسِ	(इब्राहीम:52)
14)	बयानुन	هٰذَا بَيَانٌ لِّلنَّاسِ	(आले इमरान:138)
15)	मौइज़तुन		
16)	शिफ़ाउन	قَدْ جَاۗءَتْكُمْ مَّوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَشِفَاۗءٌ لِّمَا فِي الصُّدُوْرِ	(यूनुस:57)
17)	अहसनुलक़सस	نَحْنُ نَقُصُّ عَلَيْكَ اَحْسَنَ الْقَصَصِ	(यूसुफ़:3)
18)	अहसनुल हदीस		
19)	मुताशाबिह		
20)	मसानिया	اَللّٰهُ نَزَّلَ اَحْسَنَ الْحَدِيْثِ كِتٰبًا مُّتَشَابِهًا مَّثَانِيَ	(अल् ज़ुमुर:23)
21)	मुबारकुन	كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ اِلَيْكَ مُبٰرَكٌ	(सुआद:29)
22)	मुसद्दिक़ुन		
23)	मुहय्मितुन	مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ الْكِتٰبِ وَمُهَيْمِنًا عَلَيْهِ	(अल् मायदा:48)
24)	क़य्यिम	قَيِّمًا لِّيُنْذِرَ بَاْسًا شَدِيْدًا مِّنْ لَّدُنْهُ	(अल् कहफ़:2)

यह मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ हैं जो क़ुरान हकीम की मुख़्तलिफ़ शानों के लिये आए हैं। जैसा कि अल्लाह तआला के निन्यानवे (99) नाम हैं, जो उसकी मुख़्तलिफ़ शानों को ज़ाहिर करते हैं, इसी तरह हुज़ूर ﷺ के नामों की फ़ेहरिस्त भी आपने पढ़ी होगी। आप ﷺ की मुख़्तलिफ़ शानें हैं, इसके ऐतबार से आप बशीर भी हैं, नज़ीर भी हैं, हादी भी हैं, मुअल्लिम भी हैं। क़ुरान मजीद के भी मुख़्तलिफ़ अस्मा व सिफ़ात हैं।

<u>लफ़्ज़ "क़ुरान" की लुग़वी बहस:</u>

क़ुरान मजीद के नामों में सबसे अहम नाम "अल् क़ुरान" है, जिसके लिये मैंने लफ़्ज़ exclusive इस्तेमाल किया था कि यह किसी और किताब के लिये इस्तेमाल नहीं हुआ, वरना तौरात किताब भी है, हिदायत भी थी, और उसके लिये लफ़्ज़ नूर भी आया है। इर्शाद हुआ:

اِنَّآ اَنْزَلْنَا التَّوْرٰىةَ فِيْهَا هُدًى وَّنُوْرٌ

"हमने तौरात नाज़िल की जिसमें हिदायत भी है और नूर भी।" (अल् मायदा:44)

ख़ुद क़ुरान मजीद हिदायत भी है, नूर भी है, रहमत भी है। तो बक़िया तमाम औसाफ़ तो मुश्तरिक (एक जैसे) हैं, लेकिन अल् क़ुरान के लफ़्ज़ का इतलाक़ कुतुबे समाविया (आसमानी किताबों) में से किसी और किताब पर नहीं होता। यह इम्तियाज़ी, इख़्तसासी और इस्तस्नाई नाम सिर्फ़ क़ुरान मजीद के लिये है। इसी लिये एक राय यह है कि यह इस्मे अलम है, और इस्मे जमिद है, इस्मे मुश्तक़ नहीं है। अल्लाह तआला के नाम "अल्लाह" के बारे में भी एक राय यह है कि यह इस्मे ज़ात है, इस्मे अलम है, इस्मे जामिद है, मुश्तक़ नहीं है, यह किसी और माद्दे से निकला हुआ नहीं है। जबकि एक राय यह है कि यह भी सिफ़त है, जैसे अल्लाह तआला के दूसरे सिफ़ाती नाम हैं। जैसे "अलीम" अल्लाह तआला की सिफ़त है और "अल् अलीम" नाम है, "रहीम" सिफ़त है

और “अर्रहीम” नाम है, इसी तरह इलाह पर “अल्” दाख़िल हुआ तो “अल् इलाह” बन गया और दो लाम मुद्ग़म होने (मिलने) से यह “अल्लाह” बन गया। यह दूसरी राय है। जो मामला लफ़्ज़ अल्लाह के बारे में इख़्तलाफ़ी है बईना वही इख़्तलाफ़ लफ़्ज़ क़ुरान के बारे में है। एक राय यह है कि यह इस्मे जामिद और इस्मे आलम है, इसका कोई और माद्दा नहीं है। जबकि दूसरी राय यह है कि यह इस्मे मुश्तक़ है। लेकिन फिर इसके माद्दे की ताईन में इख़्तलाफ़ है।

एक राय के मुताबिक इसका माद्दा “قرن” है, यानि क़ुरान में जो “नून” है वह भी हर्फ़े असली है। दूसरी राय के मुताबिक़ इसका माद्दा “ق ر ء” है। यह गोया महमूज़ है। मैं यह बातें अहले इल्म की दिलचस्पी के लिये अर्ज़ कर रहा हूँ। जिन लोगों ने इसका माद्दा “قرن” माना है, उनके भी दो राय हैं। एक राय यह कि जैसे अरब कहते हैं “قَرَنَ الشَّیْءَ بِالشَّیْءِ” (कोई शय [चीज़] किसी दूसरे के साथ शामिल कर दी गई) तो इससे क़ुरान बना है। अल्लाह तआला की आयात, अल्लाह तआला का कलाम जो वक़्तन-फ़-वक़्तन नाज़िल हुआ, इसको जब जमा कर दिया गया तो वह “क़ुरान” बन गया। इमाम अश’अरी भी इस राय के क़ायल हैं। जबकि एक राय इमाम फ़राअ की है, जो लुग़त के बहुत बड़े इमाम हैं, कि यह क़रीना और क़राइन से बना है। क़राइन कुछ चीज़ों के आसार होते हैं। क़ुरान मजीद की आयात चूँकि एक-दूसरे से मुशाबह हैं, जैसा कि सूरह अल् ज़ुमुर में क़ुरान मजीद की यह सिफ़त वारिद हुई है “كِتٰبًا مُّتَشَابِهًا مَّثَانِیَ” (आयत:23)। इस ऐतबार से आपस में यह आयात क़ुरनाअ हैं। चुनाँचे क़रीना से क़ुरान बन गया है।

जो लोग कहते हैं कि इसका माद्दा ق ر ء है वह क़ुरान को मसदर मानते हैं। قَرَأَ، يَقْرَأُ، قَرْأً، وَقِرَاءَةً وَ قُرْآنًا। यह अग़रचे मसदर का मारूफ़ वज़न नहीं है लेकिन इसकी मिसालें अरबी में मौजूद हैं। जैसे رَجَعَ से رُجحان और غَفَرَ से غُفران। इनके मादह में “नून” शामिल नहीं है। जैसे ग़ुफ़रान और रुजहान मसदर हैं, ऐसे ही قرأ से मसदर क़ुरान है यानि पढ़ना। और मसदर बसा औक़ात मफ़ऊल का मफ़हूम देता है। तो क़ुरान का मफ़हूम होगा पढ़ी जाने वाली शय, पढ़ी गयी शय। “قَرَأَ” में जमा करने का मफ़हूम भी है। अरब कहते हैं: قرأتُ المَاءَ فِی الْحَوْضِ “मैंने हौज़ के अंदर पानी जमा कर लिया।” इसी से क़ुरिया बना है, यानि ऐसी जगह जहाँ लोग जमा हो जायें। गोया क़ुरान का मतलब है अल्लाह का कलाम जहाँ जमा कर दिया गया। तमाम आयात जब जमा कर ली गयीं तो यह क़ुरान बन गया। जैसे क़ुरिया वह जगह है जहाँ लोग आबाद हो जायें, मिल-जुल कर रह रहे हों। तो जमा करने का मफ़हूम قَرَءَ में भी है और قرن में भी है। यह दोनों माद्दे एक-दूसरे से बहुत क़रीब हैं। बहरहाल यह इस लफ़्ज़ की लुग़वी बहस है।

क़ुरान का अस्लूबे कलाम

अब मैं अगली बहस पर आ रहा हूँ कि इसका अस्लूबे कलाम क्या है! क़ुरान मजीद ने शद व मद के साथ जिस बात की नफ़ी की है वह यह है कि यह शेर नहीं है: (यासीन:69)

وَمَا عَلَّمْنٰهُ الشِّعْرَ وَمَا يَنْۢبَغِیْ لَهٗ

“हमने अपने इस रसूल को शेर सिखाया ही नहीं, ना इनके यह शायाने शान है।”

शायरों के बारे में सूरह अल् शौराअ में आया है:

وَالشُّعَرَآءُ يَتَّبِعُهُمُ الْغَاوٗنَ ۝ اَلَمْ تَرَ اَنَّهُمْ فِیْ كُلِّ وَادٍ يَّهِيْمُوْنَ ۝ وَاَنَّهُمْ يَقُوْلُوْنَ مَا لَا يَفْعَلُوْنَ ۝

“और शायरों की पैरवी तो वही लोग करते हैं जो गुमराह हों। क्या तूने नहीं देखा कि वह हर वादी में घूमते रहते हैं (हर मैदान में सरगर्दां रहते हैं) और यह कि वह कहते हैं जो नहीं करते।”

अगली आयत में {اِلَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ....} के अल्फ़ाज के साथ इस्तसना भी आया है, और इस्तसना क़ायदा-ए-कुल्लिया की तौसीक़ करता है (Exception proves the rule)--- चुनाँचे क़ुरान मजीद के ऐतबार से शेर गोयी कोई अच्छी शय नहीं है, कोई ऐसी महमूद सिफ़त नहीं है कि जो अल्लाह तआला अपने रसूल को अता फ़रमाता। बल्कि हुज़ूर अकरम ﷺ का मामला तो यह था कि आप ﷺ कभी कोई शेर पढ़ते भी थे तो ग़लती हो जाती थी। इसलिये कि नबी अकरम ﷺ पर से अल्लाह तआला शायरी की तोहमत हटाना चाहता था, लिहाज़ा आपके अंदर शायरी का वस्फ़ (ख़ूबी) ही पैदा नहीं किया गया। सीरत का एक दिलचस्प वाक़या आता है कि हुज़ूर ﷺ ने एक मर्तबा एक शेर पढ़ा और उसमें ग़लती हुई। इस पर हज़रत अबु बकर (रज़ि०) मुस्कुराये और अर्ज़ की: اَشْهَدُ اَنَّكَ لَرَسُوْلُ اللهِ “मैं ग़वाही देता हूँ

कि यक़ीनन आप अल्लाह के रसूल हैं।" इसलिये कि अल्लाह ने फ़रमाया है: {وَمَا عَلَّمْنٰهُ الشِّعْرَ وَمَا يَنْۢبَغِيْ لَهٗ} (यासीन:69) तो वाक़िअतन आपको शेर से यानि शेर के वज़न और उसकी बहर वग़ैरह से मुनासबत नहीं थी। बाक़ी जहाँ तक शेर के मफ़हूम का और आला मज़ामीन का ताल्लुक़ है तो ख़ुद हुज़ूर ﷺ का फ़रमान है: ((اِنَّ مِنَ الْبَيَانِ لَسِحْرًا وَاِنَّ مِنَ الشِّعْرِ لَحِكْمَةً)) यानि बहुत से बयान बहुत से ख़ुत्बे और तक़रीरें जादू असर होते हैं और बहुत से अशआर के अंदर हिकमत के ख़जाने होते हैं। बाज़ शायरों के अशआर हुज़ूर ﷺ ने ख़ुद पढ़े भी हैं और उनकी तहसीन फ़रमाई है, लेकिन क़ुरान बहरहाल शेर नहीं है।

अलबत्ता एक बात कहने की जुर्रत कर रहा हूँ कि क़दीम ज़माने की शायरी जिसमें बहर, वज़न और रदीफ़ व क़ाफ़िया की पाबंदी सख़्ती के साथ होती थीं, उसके ऐतबार से यक़ीनन क़ुरान शेर नहीं है, लेकिन एक शायरी जिसका रिवाज असरे हाज़िर में हुआ है और उसके लिये ग़ालिबन क़ुरान ही के अस्लूब को चुराया गया है, जिसे आप "आज़ाद नज़्म" (Blank Verse) कहते हैं, उसके अंदर जो सिफ़ात और खुसूसियात आजकल होती हैं उनका मिन्बा और सरचश्मा क़ुरान हकीम है। इसलिये कि इसमें एक रिदम (Rythm) होता है, इसमें फ़वासल भी हैं, क़वानी के तर्ज़ पर सौती आहंग भी है, लेकिन वह जो मारूफ़ शायरी थी उसके ऐतबार से क़ुरान बड़ी ताकीद के साथ कहता है कि क़ुरान शेर नहीं है।

क़ुरान के अस्लूब के ज़िमन में दूसरी अहम बात यह है कि आम मायने में क़ुरान किताब भी नहीं है। मैं यहाँ इक़बाल का मिसरा qoute कर रहा हूँ, अग़रचे इसके वह मायने नहीं "ईं किताबे नीस्त चीज़े दीग़र अस्त!"

आज हमारा किताब का तसव्वुर यह है कि उसके मुख़्तलिफ़ अबवाब (Chapters) होते हैं। आप किसी किताब या तस्नीफ़ में एक मौज़ू को एक बाब की शक़्ल देते हैं। एक बाब (Chapter) मे एक बात मुकम्मल हो जानी चाहिये। अगले बाब में बात आगे चलेगी, कोई पिछली बात नहीं दोहराई जायेगी, तीसरे बाब में बात और आगे चलेगी। फिर एक किताब मज़मून के ऐतबार से एक वहादत बनेगी और उसके अंदर मौज़ूआत (विषय) और उन्वानात (शीर्षकों) के हवाले से अबवाब (Chapters) तक़सीम हो जायेंगे। गोया हमारे यहाँ मारूफ़ मायने में किताब का इत्लाक़ जिस चीज़ पर किया जाता है, उस मायने में क़ुरान किताब नहीं है। अल्बत्ता यह "अल् किताब" है ब-मायने लिखी हुई शय। अल्लाह तआला ने इसे किताब क़रार दिया है और इसके लिये सबसे ज़्यादा कसरत से यही लफ़्ज़ "किताब" ही क़ुरान में आया है। यह अल्फ़ाज़ साढ़े तीन सौ (350) जगह आया है। क़ुरान और क़ुरआनन तक़रीबन 70 मक़ामात पर आया है। लेकिन "क़ुरान" exclusive आया है, जबकि किताब का लफ़्ज़ तौरात, इंजील, इल्मे ख़ुदावंदी और तक़दीर के लिये भी आया है और क़ुरान मजीद के हिस्सों और अहकाम के लिये भी आया है। बहरहाल किताब इस मायने में तो है। माज़अल्लाह, कोई यह नहीं कह सकता कि क़ुरान किताब नहीं है, लेकिन जिस मायने में हम लफ्ज़ किताब बोलते हैं उस मायने में क़ुरान किताब नहीं है।

तीसरी बात यह कि यह मज्मुआ मक़ालात (collection of essays) भी नहीं है। इसलिये कि हर मक़ाला अपनी जगह पर ख़ुद मकतफ़ी और एक मुकम्मल शय होता है। लेकिन क़ुरान मजीद के बारे में हम यह बात नहीं कह सकते। तो फिर यह है क्या? पहली बात तो यह नोट कीजिये कि इसका अस्लूब ख़ुत्बे का है। अरब में दो ही चीजें ज़्यादा मारूफ़ थीं, ख़िताबत या शायरी। शौअरा (शायर का plural) उनके यहाँ बड़े महबूब थे। शायरी का उनको बड़ा ज़ौक (पसंद) था और वह शौअरा की बड़ी क़द्र करते थे। उनके यहाँ क़सीदा गोई के मुक़ाबले होते थे। फिर हर साल जो सबसे बड़ा शायर शुमार होता था उसकी अज़मत को तस्लीम करने की अलामत के तौर पर सब शायर उसके सामने बाक़ायदा सजदा करते थे। फिर उसका क़सीदा बैतुल्लाह पर लटका दिया जाता था। यही क़सीदे "سبعة معلّقة" के नाम से मारूफ़ हैं। चुनाँचे अरब या तो शेरों से वाक़िफ़ थे या ख़ुत्बों से। तो क़ुरान मजीद उस दौर की दो सबसे ज़्यादा मारूफ़ अस्नाफ़ (शायरी और ख़ुत्बा) में ख़ुत्बे के अस्लूबी पर है। इस ऐतबार से हम कह सकते हैं कि क़ुरान हक़ीम मज्मुआ-ए-ख़ुत्बाते इलाहिया (A collection of divine orations) है, जिसमें हर सूरत एक ख़ुत्बे की मांनिंद है।

ख़ुत्बे के ऐतबार से चंद बाते नोट कर लें। ख़ुत्बे में मुख़ातब (दर्शक) और ख़तीब (वक्ता) के दरमियान एक ज़हनी रिश्ता होता है। मुख़ातिब (वक्ता) को मालूम होता है कि मेरे सामने कौन लोग बैठे हैं, उनकी फ़िक्र क्या है, उनकी सोच क्या है, उनके अक़ाइद क्या हैं, उनके नज़रियात क्या हैं। वह उनका हवाला दिये बग़ैर अपनी गुफ़्तुगू के अंदर उन पर तन्क़ीद भी करेगा, उनकी तसीह भी करेगा, लेकिन कोई तम्हीदी कलिमात नहीं होंगे कि अब मैं तुम्हारी फ़लाँ ग़लती की तसीह करना चाहता हूँ, मैं अब तुम्हारे इस ख़्याल की नफ़ी

करना चाहता हूँ। यह अंदाज़ नहीं होगा बल्कि वह रवानी के साथ आगे चलेगा। मुख़ातिब (वक्ता) और मुख़ातब (दर्शक) के माबैन एक ज़हनी हम-आहंगी होती है, वह एक-दूसरे से वाक़िफ़ होते हैं, और ख़ास तौर पर मुख़ातिबीन के फ़हम, उनकी समझ, उनके अक़ीदे, उनके नज़रियात से ख़तीब वाक़िफ़ होता है। यह दर हक़ीक़त ख़ुत्बे की शान है। यही वजह है कि इसमें तहवीले ख़िताब होती है और बग़ैर वारनिंग के होती है। बसा औक़ात ग़ायब को हाज़िर फ़र्ज़ करके उससे ख़िताब किया जाता है। चुनाँचे ऐसा भी होता है कि एक ख़तीब मस्जिद में ख़ुत्बा दे रहा है और वह मुख़ातिब कर रहा है सदरे ममलकत को, हालाँकि वह वहाँ मौजूद नहीं होते। इस तरह जो लोग बैठे हुए हैं बसा औक़ात उनसे सीग़ा ग़ायब में गुफ़्तगू शुरू हो जायेगी, और यह भी बलाग़त का अंदाज़ है। कभी वह एक तरफ़ बात कर रहा, कभी दूसरी तरफ़ कर रहा है, कभी किसी ग़ायब से बात कर रहा है और ख़िताबत का वही अंदाज़ होगा अग़रचे वह ग़ायब वहाँ मौजूद नहीं है। इसको तहवीले ख़िताब कहते हैं। क़ुरान मजीद पर ग़ौर करने के ज़िमन में इसकी बहुत अहमियत होती है। अगर ख़िताब का रुख़ मुअय्यन हो कि यह बात किससे कही जा रही है, मुख़ातब कौन है, तो इस बात का असल मफ़हूम उजागर होकर सामने आता है, वरना अगर मुख़ातब का तअय्युन न हो तो बहुत से बड़े-बड़े मुग़ालतें जन्म ले सकते हैं।

ख़ुत्बे और मक़ाले में एक वाजेह फ़र्क यह होता है कि मक़ाले में आम तौर पर सिर्फ़ अक़्ल से अपील की जाती है। इसमें मन्तिक़ और अक़्ली दलीलें होती हैं, जबकि ख़ुत्बे में अक़्ल के साथ-साथ जज़्बात से भी अपील होती है। गोया कि इंसान के अंदर झाँक कर बात की जाती है। लोगों को दावत दी जाती है कि अपने अंदर झाँको। और:

وَفِيٓ أَنفُسِكُمۡۚ أَفَلَا تُبۡصِرُونَ ﴿٢١﴾

"और ख़ुद तुम्हारे अंदर भी (निशानियाँ हैं) तो क्या तुमको सूझता नहीं है?"
(अज़ ज़ारियात:21)

और:

أَفِي ٱللَّهِ شَكّٞ فَاطِرِ ٱلسَّمَٰوَٰتِ وَٱلۡأَرۡضِۖ

"(ज़रा ग़ौर करो) क्या अल्लाह के बारे में शक करते हो जो ज़मीन और आसमान का बनाने वाला है?" (इब्राहिम:10)

यह अंदाज़ बहरहाल किसी तहरीर या मक़ाले में नहीं होगा, यह ख़ुत्बे का अंदाज़ है।

एक और बात जो ख़ुत्बे के ऐतबार से उसके ख़साइस (गुणों) में से है वह यह कि एक मौस्सर (असरदार) ख़ुत्बे के शुरू में बहुत जामेअ गुफ़्तगू होती है। कामयाब ख़ुत्बा वही होगा जिसका आग़ाज़ ऐसा हो कि मुक़र्रर और ख़तीब अपने मुख़ातबीन (दर्शकों) और सामईन (श्रोताओं) की तवज्जोह अपनी तरफ़ मब्ज़ूल करा ले (पलटा ले)। और फिर अग़रचे ख़ुत्बे के दौरान मज़मून (विषय) दायें-बायें फैलेगा, इधर जायेगा, उधर जायेगा लेकिन आख़िर में आकर वह फिर किसी मज़मून के ऊपर मुर्तकज़ (केंद्रीत) हो जायेगा। यह अगर नहीं है तो गोया कि वक़्त ज़ाया हो गया। हमारे यहाँ बड़े-बड़े ख़तीब पैदा हुए हैं। ख़ासतौर पर मजलिसे अहरार ने बड़े अवामी ख़तीब पैदा किये, जिनमें से अताउल्लाह शाह बुख़ारी रहि० बहुत बड़े ख़तीब थे। उनकी तक़रीर का यह आलम होता था कि गुफ़्तगू चार-चार घंटे, पाँच-पाँच घंटे चल रही है। उसमें कभी मशरिक़ की, कभी मग़रिब की, कभी शिमाल की और कभी जुनूब की बात आ जाती। कभी हँसाने का और कभी रुलाने का अंदाज़ होता, कहीं लतीफ़ा गोई भी हो जाती। लेकिन अव्वल और आख़िर बात बिल्कुल वाज़ेह होती। ख़ूब घुमा फिरा कर भी मुख़ातब को किसी एक बात पर ले आना कि उठे तो कोई एक बात, कोई एक पैग़ाम लेकर उठे, कोई एक जज़्बा उसके अंदर जाग चुका हो, एक पैग़ाम उस तक पहुँच चुका हो, यह ख़ुत्बे के औसाफ़ हैं।

आपको मालूम है ख़्वाह ग़ज़ल हो या क़सीदा, शायरी में मुताला और मक़्ता दोनों की बड़ी अहमियत है। मुताला जानदार है तो आप पूरी ग़ज़ल पढ़ेंगे और अगर मुताला ही फुसफुसा है तो आगे आप क्या पढ़ेंगे! इसी तरह मक़्ता भी जानदार होना चाहिये। इसी लिये मक़्ता और मुताला के अल्फ़ाज़ अलैहदा से वाज़ेह किए गये हैं। खुतबात के अंदर भी इब्तदा और इख्तताम पर निहायत जामेअ और अहम मज़मून होता है। क़ुरान मजीद की सूरतों की इब्तदा और इख्तताम भी निहायत जामेअ मज़ामीन पर होती है। चुनाँचे क़ुरान मजीद की सूरतों की इब्तदाई आयात और इख्तताामी आयात की फ़ज़ीलत पर बहुत सी हदीसें मिलती हैं। सूरतुल बक़रह की इब्तदाई आयात और इख्तताामी आयात, इसी तरह सूरह आले इमरान की शुरू की आयात और फिर इख्तताामी आयात निहायत जामेअ हैं। यह अंदाज़ अक्सर व बेशतर

सूरतों में मिलेगा। यह है असल में बिल् अमूम क़ुरान का असलूब, जो ज़ाहिर बात है शायरी का नहीं है। आम मयाने में वह किताब नहीं, मज्मुआ-ए-मक़ालात नहीं। इसका असलूब अगर है तो वह ख़ुत्बे से मिलता है। यह गोया ख़ुत्बाते इलाहिया हैं जिनका मज्मुआ है क़ुरान!

❀ ❀ ❀

बाब सौम (तीसरा)

क़ुरान मजीद की तरकीब व तक़सीम

आयात और सूरतों की तक़सीम

बहुत सी चीज़ों से मिल कर कोई शै मुरक्कब (मिश्रण) बनती है। क़ुरान कलामे मुरक्कब है। इसकी तक़सीम सूरतों और आयात में है। फिर इसमें अहज़ाब और ग्रुप हैं। आम तसव्वुरे किताब तो यह है कि इसके अबवाब होते हैं, लेकिन क़ुरान हकीम पर इन इस्तलाहात का इत्लाक़ नहीं होता। क़ुरान हकीम ने अपनी इस्तलाहात ख़ुद वाज़ेह की है। इन इस्तलाहात की दुनिया में मौजूद किसी भी किताब की इस्तलाहात से कोई मुशाबिहत नहीं है। चुनाँचे अल्लामा जाहज़ ने एक बड़ा ख़ूबसूरत उन्वान क़ायम किया है। वो कहते हैं कि अरब इससे तो वाक़िफ थे कि उनके बड़े-बड़े शायरों के दीवान होते थे। सारा कलाम किताबी शक़्ल में जमा हो गया तो वह दीवान कहलाया। लिहाज़ा किसी भी दर्जे में अगर मिसाल या तशबीह से समझना चाहें तो दीवान के मुक़ाबले में लफ़्ज़ क़ुरान है। फिर दीवान बहुत से क़सीदों का मज्मुआ होता था। हमारे यहाँ भी किसी शायर का दीवान होगा तो उसमें क़सीदें होंगे, ग़ज़लें होंगी, नज़्में होंगी। क़ुरान हकीम में इस सतह पर जो लफ़्ज़ है वह सूरत है। अल्लाह तआला का यह कलाम सूरतों पर मुश्तमिल है। अगर कोई नस्र (गद्य) की किताब है तो वह जुमलों पर मुश्तमिल होगी और अगर नज़्म (कविता) की है तो वह अशआर पर मुश्तमिल होगी। इसकी जगह क़ुरान मजीद की इस्तलाह आयत है। शायरी में अशआर के ख़ात्मे पर रदीफ़ के साथ-साथ एक लफ़्ज़ क़ाफिया कहलाता है और ग़ज़ल के तमाम अशआर हम क़ाफिया होते हैं। क़ुरान मजीद पर भी हम आमतौर पर इस लफ़्ज़ का इत्लाक़ कर देते हैं, इसलिये कि क़ुरान मजीद की आयतों में भी आख़िरी अल्फ़ाज़ के अंदर सौती आहंग है। यहाँ इन्हें फ़वासिल कहा जाता है, क़ाफिया का लफ़्ज़ इस्तेमाल नहीं किया जाता कि किसी भी दर्जे में शेर के साथ कोई मुशाबिहत ना पैदा हो जाये।

क़ुरान मजीद का सबसे छोटा यूनिट आयत है। यानि क़ुरान मजीद की इब्तदाई इकाई के लिये लफ़्ज़ आयत अखज़ किया गया है। आयत के मायने निशानी के हैं। क़ुरानी आयत गोया अल्लाह के इल्म व हिकमत की निशानी है। आयत का लफ़्ज़ क़ुरान मजीद में बहुत से मायनों में इस्तेमाल हुआ है। मसलन आयाते आफ़ाक़ी और आयाते अन्फुसी। इस कायनात में हर तरफ़ अल्लाह तआला की निशानियाँ हैं। कायनात की हर शय अल्लाह तआला की क़ुदरत, उसके इल्म और उसकी हिकमत की गवाही दे रही है। गोया हर शय अल्लाह की निशानी है। फिर कुछ निशानियाँ हमारे अंदर हैं। चुनाँचे फ़रमाया:

وَفِي الْاَرْضِ اٰيٰتٌ لِّلْمُوْقِنِيْنَ ۝ وَفِيْٓ اَنْفُسِكُمْ ۭ اَفَلَا تُبْصِرُوْنَ ۝

"और ज़मीन में निशानियाँ हैं यक़ीन लाने वालों के लिये। और ख़ुद तुम्हारे अपने वजूद में भी। क्या तुमको सूझता नहीं?"
(अज़ ज़ारियात:20-21)

मज़ीद फ़रमाया:

سَنُرِيْهِمْ اٰيٰتِنَا فِي الْاٰفَاقِ وَفِيْٓ اَنْفُسِهِمْ حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَهُمْ اَنَّهُ الْحَقُّ

"अनक़रीब हम उनको अपनी निशानियाँ आफ़ाक़ में भी दिखायेंगे और उनके अपने नफ़्स में भी, यहाँ तक कि उन पर यह बात वाज़ेह हो जायेगी कि यह क़ुरान वाक़ई बरहक़ है।" (हा मीम सजदा:53)

अंग्रेजी में आयत के लिये हम लफ़्ज़ verse बोल देते हैं, मगर verse तो शेर को कहते हैं जबकि क़ुरान की आयात ना तो शेर हैं, ना मिसरे हैं, ना जुमले हैं। बस बायना लफ़्ज़ आयत ही को आम करना चाहिये। बहरहाल कुछ आयाते आफ़ाक़ी हैं, यानि अल्लाह की निशानियाँ, कुछ आयाते अन्फुसी हैं, वह भी अल्लाह की निशानियाँ हैं और आयाते क़ुरानियाँ भी दरहक़ीक़त अल्लाह तआला की हिक़्मते बालग़ा और इल्मे कामिल की निशानियाँ हैं। यह लफ़्ज़ क़ुरान की इकाई के तौर पर इस्तेमाल हुआ है।

जान लेना चाहिये कि आयात का तअय्युन किसी ग्रामर, बयान या नह्व (syntax) के उसूल पर नहीं है, इसमें कोई इज्तहाद (अपनी राय) दाख़िल नहीं है, बल्कि इसके लिये एक इस्तलाह "तौक़ीफ़ी" इस्तेमाल होती है, यानि यह रसूल अल्लाह ﷺ के बताने पर मौक़ूफ़ (निर्भर) है। चुनाँचे हम देखते हैं कि आयात बहुत तवील (लम्बी) भी हैं। एक आयत आयतल कुर्सी है जिसमें मुकम्मल दस जुमले हैं, लेकिन बाज़ आयात हर्फ़े मुक़त्आत पर भी मुश्तमिल हैं। {حٰمٓ} एक आयत है, हालाँकि इसका कोई मफ़हूम मालूम नहीं है, आम ज़बान के ऐतबार से इसके मायने मुअय्यन नहीं किये जा सकते। यह तो हुरूफे तहज्जी हैं। इसको मुरक्कबे कलाम भी नहीं कह सकते, क्योंकि इसको अलैहदा-अलैहदा पढ़ा जाता है। इसलिये यह हुरूफे मुक़त्आत कहलाते हैं। {حٰمٓ} {عٓسٓقٓ} इनको जमा नहीं कर सकते, यह तोड़-तोड़ कर अलैहदा-अलैहदा पढ़े जायेंगे। इसी तरह "अलिफ़ लाम मीम" को "अलम्" नहीं पढ़ा जा सकता। लेकिन यह भी आयत है। इस बारे में एक बात याद रखिये कि जहाँ हुरूफे मुक़त्आत में से एक-एक हर्फ़ आया है जैसे {صٓ وَالْقُرْاٰنِ ذِي الذِّكْرِ} {نٓ وَالْقَلَمِ وَمَا يَسْطُرُوْنَ} {قٓ وَالْقُرْاٰنِ الْمَجِيْدِ} यहाँ एक हर्फ़ पर आयत नहीं बनी, लेकिन दो-दो हरूफ़ पर आयतें बनी हैं। "हा मीम" क़ुरान में सात जगह आया है और यह मुकम्मल आयत है। अलिफ़ लाम मीम आयत है। अल्बत्ता "अलिफ़ लाम रा" तीन हुरूफ़ हैं और वह आयत नहीं है। मालूम हुआ कि इसकी बुनियाद किसी उसूल, क़ायदे या इज्तहाद (अपनी राय) पर नहीं है बल्कि यह अमूर कुल्लियतन तौक़ीफी (अल्लाह के द्वारा सिखाया हुआ) हैं कि हुज़ूर ﷺ के बताने से मालूम हुए हैं। अलबत्ता फिर हुज़ूर ﷺ से चूँकि मुख़्तलिफ़ रिवायात हैं, इसलिये इस पहलु से कहीं-कहीं फ़र्क़ वाक़ेअ हुआ है। चुनाँचे आयाते क़ुरानिया की तादाद मुत्तफ़िक़ अलै नहीं है। इस पर तो इत्तेफाक़ है कि आयतों की तादाद छः हज़ार से ज़्यादा है, लेकिन बाज़ के नज़दीक कमोबेश 6216, बाज़ के नज़दीक 6236 और बाज़ के नज़दीक 6666 है। इसके मुख़्तलिफ़ असबाब हैं। बाज़ सूरतों के अंदर आयतों के तअय्युन में भी फ़र्क़ है। लेकिन यह सब किसी का अपना इज्तहाद (अपनी राय) नहीं है, बल्कि सब के सब अदद व शुमार हुज़ूर ﷺ की नक़ल होने की बुनियाद पर है। एक फर्क़ यह भी है कि आयत बिस्मिल्लाह क़ुरान हक़ीम में 113 मर्बता सूरतों के शुरू में आती है (क्योंकि सूरतों की कुल तादाद 114 है और उनमें से सिर्फ़ एक सूरत सूरह तौबा के शुरू में बिस्मिल्लाह नहीं आती)। अगर इसको हर मर्तबा शुमार किया जाये तो 113 तादाद बढ़ जायेगी, हर मर्तबा शुमार ना किया जाये तो 113 तादाद कम हो जायेगी। इस ऐतबार से आयाते क़ुरानिया की तादाद मुत्तफ़िक़ अलै नहीं है, बल्कि इसमें इख़्तलाफ़ है। जैसा कि पहले ज़िक्र हो चुका

कि हुरूफे मुक़त्आत पर भी आयत है, मुरक्कबाते नाक़िसा पर भी आयत है, जैसे {وَالْعَصْرِ} कहीं आयत मुकम्मल जुमला भी है, और ऐसी आयतें भी हैं जिनमें दस-दस जुमले हैं।

क़ुरान हकीम की आयतें जमा होती हैं तो सूरतें वजूद में आती हैं सूरत का लफ़्ज़ "सूर" से माख़ूज़ है और यह लफ्ज़ सूरह अल् हदीद में फ़सील के मायने में आया है। पिछले ज़माने में हर शहर के बाहर, गिर्दा-गिर्द (चारों तरफ़) एक फ़सील (firewall) होती थी जो शहर का इहाता कर लेती थी, शहर की हिफ़ाज़त का काम भी देती थी और हद बंदी भी करती थी। आयतों को जब जमा किया गया तो उससे जो फ़सीलें वजूद में आयीं वह सूरतें हैं। फ़सल अलैहदा करने वाली शय को कहते हैं। तो गोया एक सूरह दूसरी सूरह से अलैहदा हो रही है। फसील अलैहदगी की बुनियाद है। फ़सील के लिये "सूर" का लफ़्ज़ मुस्तमिल है, फिर इससे सूरत बना है। अलबत्ता यह सूरतें "अबवाब" नहीं हैं, बल्कि जिस तरह आयत के लिये लफ़्ज़ verse मुनासिब नहीं इसी तरह सूरत के लिये लफ़्ज़ "बाब" या chapter दुरुस्त नहीं।

अब जान लीजिये कि जैसे आयात का मामला है ऐसे ही सूरतों का भी है। चुनाँचे सूरतें बहुत छोटी भी हैं। क़ुरान मजीद की तीन सूरतें सिर्फ़ तीन-तीन आयात पर मुश्तमिल हैं: सूरह अल् अस्र, सूरह अल् नस्र, सूरह अल् कौसर। जबकि तीन सूरतें 200 से ज़्यादा आयतों पर मुश्तमिल हैं। सूरह अल् बक़रह की 285 या 286 आयतें हैं। (सूरह अल् बक़रह की आयतों की तादाद के ऐतबार से राय में फ़र्क है)। सबसे ज़्यादा आयतें सूरह अल् बक़रह में हैं। फिर सूरह अश् शौरा में 227 और सूरह आराफ़ में 206 आयतें हैं। मुहक़्क़ीन उलेमाओं का इस पर इज्मा है कि आयतों की तरह सूरतों का तअय्युन भी हुज़ूर ﷺ ने ख़ुद फ़रमाया। अग़रचे एक ज़ईफ़ सा क़ौल मिलता है कि शायद यह काम सहाबा किराम (रज़ि०) ने किसी इज्तहाद से किया हो, मगर यह मुख़्तार क़ौल नहीं है, ज़ईफ़ है। इज्मा इसी पर है कि आयतों की ताईन भी तौक़ीफी और सूरतों की ताईन भी तौक़ीफी है।

क़ुरान हकीम की सात मंज़िलें

दौरे सहाबा (रज़ि०) में हमें एक तक़सीम मिलती है और वह है सात मंज़िलों की शक़्ल में सूरतों की ग्रुपिंग। इन्हें अहज़ाब भी कहते हैं। "हज़्ब" का लफ़्ज़ अहादीस में मिलता है, लेकिन वह एक ही मायने में नहीं होता। यह लफ़्ज़ इस मायने में भी इस्तेमाल होता था कि हर शख़्स अपने लिये तिलावत की एक मिक़दार मुअय्यन कर लेता था कि मैं इतनी मिक़दार रोज़ाना पढ़ूँगा। यह गोया कि उसका अपना हज़्ब है। चुनाँचे हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) से मरवी एक हदीस में आया है कि रसूल ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

مَنْ نَامَ عَنْ حِزْبِہٖ مِنَ اللَّيْلِ، اَوْ عَنْ شَیْءٍ مِنْہُ، فَقَرَأَہٗ مَا بَيْنَ صَلَاةِ الْفَجْرِ وَ صَلَاةِ الظُّهْرِ، كُتِبَ لَہٗ كَاَنَّمَا قَرَأَہٗ مِنَ اللَّيْلِ (اخرجہ الجماعۃ الا البخاری)

"जो शख़्स नींद (या बीमारी) की वजह से रात को (तहज्जुद में) अपने हज़्ब को पूरा न कर सके, फिर वह फ़जर और ज़ुहर के दरमियान उसकी तिलावत कर ले तो उसके लिये उतना ही सवाब लिखा जायेगा गोया उसने उसे रात के दौरान पढ़ा है।" (यह हदीस बुख़ारी के सिवा दीगर अइम्मा-ए-हदीस ने रिवायत की है)

यानि जो शख़्स किसी वजह से किसी रात अपने हज़्ब को पूरा न कर सके, जितना भी निसाब उसने मुअय्यन किया हो, किसी बीमारी की वजह से, य़ा नींद का ग़लबा हो जाये, तो उसे चाहिये कि अपनी इस क़िरात या तिलावत को वह दिन के वक़्त ज़रूर पूरा कर ले। सहाबा किराम (रज़ि०) में से अक्सर का मामूल था कि हर हफ्ते क़ुरान मजीद की तिलावत ख़त्म कर लेते थे। लिहाज़ा ज़रूरत महसूस हुई कि क़ुरान के सात हिस्से ऐसे हो जायें कि एक हिस्सा रोज़ाना तिलावत करें तो हर हफ्ते क़ुरान मजीद का दौर मुकम्मल हो जाये। इसलिये सूरतों के सात मज्मुऐ या ग्रुप बना दिये गये। इन ग्रुपों के लिये आज-कल हमारे यहाँ जो लफ़्ज़ मुस्तमिल है वह "मंज़िल" है, लेकिन हदीसों और रिवायतों में हज़्ब का लफ़्ज़ आता है।

अहज़ाब या मंज़िलों की इस तक़सीम में बड़ी ख़ूबसूरती है। ऐसा नहीं किया गया कि यह सातों हिस्से बिल्कुल मसावी (बराबर) किये जायें। अगर ऐसा होता तो ज़ाहिर बात है कि सूरतें टूट जातीं, उनकी फ़सील ख़त्म हो जाती। चुनाँचे हर हज़्ब में पूरी-पूरी सूरतें जमा की गईं। इस तरह अहज़ाब या मंज़िलों की मिक़दार मुख़्तलिफ़ हो गईं। चुनाँचे कुछ हज़्ब छोटे हैं कुछ बड़े हैं, लेकिन इनके अंदर सूरतों की फ़सीलें नहीं टूटीं, यह इनका हुस्न है। ग़ौर करें तो मालूम होता है कि यह शय भी शायद अल्लाह तआला ही की तरफ़ से है। अग़रचे यह नहीं कहा जा सकता कि मंज़िलों की ताईन भी तौक़ीफ़ी है, लेकिन मंज़िलों की इस तक़सीम में गिनती के ऐतबार से जो हुस्न पैदा हुआ है

उससे मालूम होता है कि यह भी अल्लाह तआला की हिकमत ही का एक मज़हर है। सूरतुल फ़ातिहा को अलग रख दिया जाये कि यह तो क़ुरान हकीम का मुक़दमा या दिबाचा है तो इसके बाद पहला हज़्ब या मंज़िल तीन सूरतों (अल् बक़रह, आले इमरान, अल् निसा) पर मुश्तमिल है। दूसरी मंज़िल पाँच सूरतों पर, तीसरी मंज़िल सात सूरतों पर, चौथी मंज़िल नौ सूरतों पर, पाँचवीं मंज़िल ग्यारह सूरतों पर, और छठी मंज़िल तेरह सूरतों पर मुश्तमिल है, जबकि सातवीं मंज़िल (हज़्बे मुफ़स्सल) जो कि आखिरी मंज़िल है, इसमें 65 सूरतें हैं। आख़िर में सूरतें छोटी-छोटी हैं। याद रहे कि 65 भी 13 का multiple बनता है (13x5=65)। सूरतों की तादाद जैसा कि ज़िक्र हो चुका 114 है। यह तादाद मुत्तफ़िक़ अलै है, जिसमें कोई शक व शुबह की गुंजाइश नहीं।

आजकल जो क़ुरान हकीम हुकुमत सऊदी अरब के ज़ेरे अहतमाम बहुत बड़ी तादाद में बड़ी ख़ूबसूरती और नफ़ासत से शाया (प्रकाशित) होता है, उसमें हज़्ब का लफ़्ज़ बिल्कुल एक नये मायने में आया है। उन्होंने हर पारे को दो हज़्ब में तक़सीम कर लिया है, गोया निस्फ़ पारे की बजाये लफ़्ज़ हज़्ब है। फिर वह हज़्ब भी चार हिस्सों में मुन्क़सिम है: رُبع الحزب، نصفُ الحزب और फिर ثلاثۃُ ارباعِ الحزب। इस तरह उन्होंने हर पारे के आठ हिस्से बना लिये हैं। यह लफ़्ज़ हज़्ब का बिल्कुल नया इस्तेमाल है। इसकी क्या सनद और दलील है और यह कहाँ से माख़ूज़ है, यह मेरे इल्म में नहीं है।

इंसानी कलाम हुरूफ़ और अस्वात (आवाज़) से मुरत्तब (बना) होता है और हर ज़बान में हुरूफे हिजाइया होते हैं। फिर हुरूफ़ मिल कर कलिमात बनाते है। कलिमात से कलाम वजूद में आता है, ख़्वाह वह कलाम मंज़ूम (नज़्म में) हो या नसर हो। इस तरह क़ुरान मजीद की तरकीब है। हुरूफ़ से मिलकर कलिमात बने, कलिमात ने आयात की शक़्ल इख़्तियार की, आयात जमा हुईं सूरतों की शक़्ल में और सूरतें जमा हो गयीं मंज़िलों की शक़्ल में।

रुकुओं और पारों की तक़सीम

सूरतों की पहली तक़सीम रुकुओं में है। यह तक़सीम दौरे सहाबा (रज़ि०) और दौरे नबवी ﷺ में मौजूद नहीं थी। यह तक़सीमें ज़माना मा बाद की पैदावार हैं। रुकुओं की तक़सीम बड़ी सूरतों में की गई। 35 सूरतें ऐसी हैं जो एक ही रुकु पर मुश्तमिल हैं, यानि वह इतनी छोटी हैं कि इन्हें एक रकात में आसानी से पढ़ा जा सकता है, लेकिन बक़िया सूरतें तवील हैं। सूरह अल् बक़रह में 285 या 286 आयात हैं और उसके 40 रुकु हैं। हुज़ूर ﷺ से मंक़ूल है कि आप ﷺ ने एक रात इन तीन सूरतों (अल् बक़रह, आले इमरान, अल् निसा) की मंज़िल एक रकात में मुकम्मल की है। लेकिन यह तो इस्तसनात (exceptions) की बात है। आम तौर पर तिलावत की वह मिक़दार जो एक रकात में बा-आसानी पढ़ी जा सकती हो, एक रुकु पर मुश्तमिल होती है। रुकु रकात से ही बना है। यह तक़सीम हज्जाज बिन युसुफ़ के ज़माने में यानि ताबईन के दौर में हुई है। लेकिन ऐसा नज़र आता है कि यह तक़सीम बड़ी मेहनत से मायने पर ग़ौर करते हुए की गई है कि किसी मक़ाम पर एक मज़मून मुकम्मल हो गया और दूसरा मज़मून शुरु हो रहा है तो वहाँ अगर रुकु कर लिया जाये तो बात टूटेगी नहीं। अग़रचे हमारे यहाँ आमतौर पर अइम्मा-ए-मसाजिद पढ़े-लिखे लोग नहीं होते, अरबी ज़बान से वाक़िफ नहीं होते, लिहाज़ा अक्सर ऐसी तकलीफ़देह सूरते हाल पैदा होती है कि वह ऐसी जगह पर रुकु कर देते हैं जहाँ कलाम का रब्त मुंक़तह हो जाता है। फिर अगली रकात में वहाँ से शुरु करते हैं जहाँ से बात मायनवी ऐतबार से बहुत ही गिराँ गुज़रती है। रुकुओं की तक़सीम बिलउमूम बहुत उम्दा है, लेकिन चंद एक मक़ामात पर ऐसा महसूस होता है कि अगर यह आयत यहाँ से हटा कर रुकु मा क़ब्ल में शामिल की गई होती या रुकु का निशान इस आयत से पहले होता तो मायने और मफ़हूम के ऐतबार से बेहतर होता। बहरहाल अक्सर व बेशतर रुकुओं की तक़सीम मायनवी ऐतबार से सही है जो बड़ी मेहनत से गहराई में ग़ौर करके की गई है।

इसके अलावा एक तक़सीम पारों की शक़्ल में है। यह तक़सीम तो और भी बाद के ज़माने की है और बड़ी भूंडी तक़सीम है, इसलिये कि इसमें सूरतों की फ़सीलें तोड़ दी गई हैं। ऐसा महसूस होता है कि जब मुसलमानों का जोशे ईमान कम हुआ और लोगों ने मामूल बनाना चाहा कि हर महीने में एक मर्तबा क़ुरान ख़त्म कर लें तब उनको ज़रूरत पेश आई कि इसको तीस हिस्सों में तक़सीम किया जाये। इस मक़सद के लिये किसी ने ग़ालिबन यह हरकत की कि उसके पास जो मुस्हफ़ मौजूद था उसने उसके सफ़्हें (पन्ने) गिन कर तीस पर तक़सीम करने की कोशिश की। इस तरह जहाँ भी सफ़्हा (पन्ना) कट गया वहीं निशान लगा दिया और अगला पारा शुरू हो गया। इस भूंडी तक़सीम

की मिसाल देखिये कि सूरह अल् हिज्र की एक आयत तेहरवें पारे में है जबकि बाक़ी पूरी सूरत चौदहवें पारे में है। हमारे यहाँ जो मुस्हफ़ है उनमें आपको यही शक़्ल नज़र आयेगी। सऊदी अरब से जो क़ुरान मजीद बड़ी तादाद में शाये होकर (छप कर) पूरी दुनिया में फैला है, यह अब पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी मुसलमानों के लिये इसी अंदाज़ से शाया किया जाता है जिससे कि हम मानूस (परिचित) हैं। अलबत्ता अहले अरब के लिये जो क़ुरान मजीद शाया किया जाता है उसमें रमूज़े अवक़ाफ और अलामाते ज़ब्त भी मुख़्तलिफ़ हैं और उसमें चौदहवाँ जुज़ सूरह अल् हिज्र से शुरू किया जाता है। गोया वह तक़सीम जो हमारे यहाँ है उसमें उन्होंने इज्तहाद से काम लिया है, अगरचे पारों की तक़सीम बाक़ी रखी है। बाज़ दूसरे अरब मुमालिक (देशों) से जो क़ुरान मजीद शाये होते हैं, उनमें पारों का ज़िक्र ही नहीं है। इसलिये कि यह कोई मुत्तफ़िक़ अलै चीज़ नहीं है और ज़मान-ए-ताबईन में भी इसका कोई तज़करा नहीं है, यह इससे बहुत बाद की बात है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) और हज़रत इमरान इब्ने हुसैन (रज़ि०) से मरवी मुत्तफ़िक़ अलै हदीस है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

خَيْرُ النَّاسِ قَرْنِىْ ثُمَّ اللَّذِيْنَ يَلُونَهُمْ ثُمَّ اللَّذِيْنَ يَلُوْنَهُمْ

इस हदीस की रू से बेहतरीन अदवार (वक़्त) तीन ही हैं। दौरे सहाबा, दौरे ताबईन, फिर दौरे तबे ताबईन। इन तीन ज़मानों को हम "قرنٌ مشهودٌ لها بِالخير" कहते हैं। बाक़ी इसके बाद का मामला हुज्जत नहीं है, इसकी दीन के अंदर कोई मुस्तक़िल और दायमी अहमियत नहीं है।

तरतीबे नुज़ूली और तरतीबे मुस्हफ़ का इख़्तलाफ़

क़ुरान हकीम की तरतीब के ज़िमन में पहली बात जो बिल्कुल मुत्तफ़िक़ अलै और हर शक व शुबह से बाला है वह यह है कि तरतीबे नुज़ूली बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है और तरतीबे मुस्हफ़ बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है। अक्सर व बेशतर जो सूरतें इब्तदा में नाज़िल हुईं वह आख़िर में दर्ज हैं और हिजरत के बाद जो सूरतें नाज़िल हुई हैं (अल् बक़रह, आले इमरान, अल् निसा, अल् मायदा) उनको शुरू में रखा गया है। तो इसमें किसी शक व शुबह की गुंजाईश नहीं कि तरतीबे नुज़ूली और तरतीबे मुस्हफ़ मुख़तलिफ़ है।

जहाँ तक तरतीबे नुज़ूली का ताल्लुक़ है, इससे हर तालिबे इल्म को दिलचस्पी होती है जो क़ुरान मजीद पर ग़ौर करना चाहता है। इसलिये कि तरतीबे नुज़ूली के हवाले से क़ुरान हकीम के मायने और मफ़्हूमों का एक नया पहलु सामने आता है। एक तो यह कि एक ख़ास पसमंज़र के साथ सूरतें जुड़ती हुई चली जाती हैं। इब्तदा में क्या हालात थे जिनमें यह सूरतें नाज़िल हुईं, फिर हालात ने क्या पलटा खाया तो अगली सूरतें नाज़िल हुईं। चुनाँचे तरतीबे नुज़ूली के हवाले से क़ुरान हकीम को मुरत्तब किया जाये तो एक ऐतबार से वह सीरतुन नबी ﷺ की किताब बन जायेगी। इसलिये कि आग़ाज़े वही के बाद से लेकर आप ﷺ के इन्तेक़ाल तक वह ज़माना है जिसमें क़ुरान नाज़िल हुआ। दूसरे यह कि इस पूरे ज़माने के साथ क़ुरान मजीद की आयात और सूरतों का जो मज्मुई रब्त है, तरतीबे नुज़ूली की मदद से उसे समझने और ग़ौर फिक्र करने में मदद मिलती है। पस (इसलिये) क़ुरान मजीद के हर तालिबे इल्म को इससे दिलचस्पी होना समझ में आता है। चुनाँचे बाज़ सहाबा (रज़ि०) के बारे में रिवायात मिलती हैं कि उन्होंने तरतीबे नुज़ूली के ऐतबार से क़ुरान हकीम को मुरत्तब (set) किया था। हज़रत अली (रज़ि०) के बारे में यह बात बहुत शद व मद (विस्तार) के साथ कही जाती है कि उन्होंने भी इसको तरतीबे नुज़ूली के ऐतबार से क़ुरान हकीम को मुरत्तब किया था, और अवाम की सतह पर यह मशहूर है कि अहले तशय्य (शिया) उसी को असल और मुस्तनद क़ुरान मानते हैं और हज़रत अली (रज़ि०) का यह मुस्हफ़ उनके बारहवें इमाम के पास है, जो एक ग़ार में रू पोश हैं। क़यामत के क़रीब जब वह ज़ाहिर होंगे तब वह अपना यह मुस्हफ़ यानि "असल क़ुरान" लेकर आयेंगे। गोया अहल तशय्य (शिया) यह क़ुरान उस वक़्त तक के लिये ही क़ुबूल करते हैं। आमतौर पर उनकी तरफ़ यही बात मन्सूब है, लेकिन दौरे हाज़िर के बाज़ शिया उल्मा इस तसव्वुर के क़ायल नहीं हैं। एक शिया आलिमे दीन सय्यद हादी अली नक़्वी ने बहुत शद व मद (विस्तार) के साथ इस तसव्वुर की नफ़ी की है और कहा है कि "हम इसी क़ुरान को मानते हैं, यही असल क़ुरान है और इसे मन व अन महफ़ूज़ मानते हैं। हमारे नज़दीक कोई आयत इससे ख़ारिज नहीं हुई और कोई शय बाहर से बाद में इसमें दाखिल नहीं हुई। यही जो "دَفَّتَين" यानि जिल्द के दो गत्तों के माबैन है, यही हक़ीक़ी और असली क़ुरान है।"

बहरहाल अगर हज़रत अली (रज़ि०) के पास ऐसा कोई मुस्हफ़ था जिसे आपने तरतीबे नुज़ूली के मुताबिक़ मुरत्तब किया था तो इसमें कोई हर्ज की बात नहीं। अमली और हक़ीक़ी ऐतबार से क़ुरान हकीम पर ग़ौरो फ़िक्र करने

के लिये क़ुरान मजीद के बाज़ अंग्रेज़ी तर्जुमें में भी तरतीबे नुज़ूली के ऐतबार से सूरतों को मुरत्तब करके तर्जुमा किया गया है। (मुहम्मद इज़्ज़तु दरविज़ा ने भी अपनी तफ़्सीर "अल् तफ़्सीर अल् हदीस" में सूरतों को नुज़ूली ऐतबार से तरतीब दिया है।) अमली ऐतबार से इसमें कोई हर्ज नहीं, लेकिन असल हुज्जत तरतीबे मुस्हफ़ की है। यह तरतीब तौक़ीफ़ी (अल्लाह के द्वारा बताया हुआ) है। यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की दी हुई तरतीब है और यही तरतीब लौहे महफ़ूज़ में है। असल क़ुरान तो वही है। अज़रूए अल्फ़ाज़े क़ुरानी:

{اِنَّهٗ لَقُرْاٰنٌ كَرِيْمٌ ۝ فِيْ كِتٰبٍ مَّكْنُوْنٍ ۝} (अल् वाक़िया:77-78) और {بَلْ هُوَ قُرْاٰنٌ مَّجِيْدٌ ۝ فِيْ لَوْحٍ مَّحْفُوْظٍ ۝} (अल् बुरुज:21-22)

"अल् इतक़ान फी उलूमुल् क़ुरान" में जलालुद्दीन स्यूति रहि० ने बहुत ही ज़ोर और ताकीद के साथ किसी का यह क़ौल नक़ल किया है कि अगर तमाम इंसान और जिन्न मिल कर कोशिश कर लें तब भी तरतीबे नुज़ूली पर क़ुरान को मुरत्तब नहीं किया जा सकता। इसलिये कि इसके बारे में हमारे पास मुकम्मल मालूमात नहीं हैं। बहुत सी सूरतों के अंदर बाद में नाज़िल होने वाली आयतें पहले आ गई हैं और शुरू में नाज़िल होने वाली बाद में आई हैं। इस ऐतबार से एक-एक आयत के बारे में मुअय्यन करना और उसकी तरतीब के बारे में इज्मा नामुमकिन है। चुनाँचे असल मुस्हफ़ वही है जो हमारे पास है और इसकी तरतीब भी तौफ़ीक़ी (अल्लाह के द्वारा बताया हुआ) है जो मुहम्मद रसूल ﷺ ने बताई है।

इस तरतीबे मुस्हफ़ के ऐतबार से इस दौर में सूरतों की एक नयी ग्रुपिंग की तरफ़ रहनुमाई हुई है। मौलाना हमीदुद्दीन फ़राही रहि० ने ख़ासतौर पर अपनी तवज्जह को नज़्मे क़ुरान पर मरकूज़ किया, आयात का बाहमी रब्त तलाश किया। नेज़ यह कि आयतों की वह कौनसी क़द्र मुशतरक है जिसकी बिना पर उनको सूरतों में जमा किया गया--- फिर यह कि हर सूरत का एक अमूद और मरकज़ी मज़मून है, बज़ाहिर आयतें ग़ैर मरबूत (असंबंधित) नज़र आतीं हैं लेकिन दरहक़ीक़त उनके माबैन (बीच) एक मन्तक़ी (वैचारिक) रब्त मौजूद है और हर आयत उस सूरत के अमूद (केंद्रीय विचार) के साथ मरबूत (संबंधित) है--- मज़ीद यह कि सूरतें जोड़ों की शक़्ल में हैं--- इन चीजों पर मौलाना फ़राही रहि० ने ज्यादा तवज्जह की। मौलाना इस्लाही साहब ने इस बात को मज़ीद आगे बढ़ाया है।

इस बारे में एक इश्तबाह (शक) पैदा हो सकता है, जिसे रफ़ा (दूर) कर देना ज़रूरी है कि क़ुरान मजीद का यह पहलु इस ज़माने में क्यों सामने आया और इससे पहले इस पर ग़ौर क्यों नहीं हो सका? क्या हमारे अस्लाफ़ (पूर्वज) क़ुरान मजीद पर तदब्बुर का हक़ अदा नहीं करते थे? इस इस्तबाह (शक) को अपने ज़हन में न आने दें, इसलिये कि क़ुरान मजीद की शान यह है कि इसके अजायब (अजूबे) कभी ख़त्म नहीं होंगे। हुज़ूर ﷺ का अपना क़ौल है: "لَا تَنْقَضِی عَجَائِبُہٗ"। अगर कोई शख़्स यह समझता है कि किसी ख़ास दौर के मुहद्दसीन, मुहक़्क़ीन, मुफ़स्सरीन क़ुरान मजीद के इल्म का बतमाम व कमाल इहाता कर चुके तो वह सख़्त ग़लती पर है। अगर ऐसा होता तो यह क़ुरान मजीद पर भी तअन होता और ख़ुद हुज़ूर ﷺ के इस क़ौल की भी नफ़ी होती। यह तो जैसे-जैसे ज़माना आगे बढ़ेगा क़ुरान मजीद के अजायब, इसकी हिकमतें, इसके उलूम (अध्ययन) व मारफ़ के नये-नये ख़ज़ाने बरामद होते रहेंगे। चुनाँचे हमारा तर्ज़े अमल यह होना चाहिये कि मुताअला क़ुरान के बाद हम यह महसूस करें कि हमने अपनी इस्तताअत (क्षमता) के मुताबिक़ इसको सीखा है और बाद में आने वाले इसमें से कुछ और भी हासिल करेंगे, वह हमेशा इसके लिये कोशां रहेंगे, इसमें ग़ौरो फ़िक्र और तदब्बुर करते रहेंगे और नये-नये उलूम (अध्ययन) और नये-नये निकात इसमें से बरामद होते रहेंगे। अल्लाह तआला कि हिकमत में यही ज़माना इस इन्कशाफ़ के लिये मुअय्यन था, और ज़ाहिर बात है कि हिकमते क़ुरानी का जो भी कोई नया पहलु दरयाफ़्त होगा वह किसी इंसान ही के ज़रिये से होगा। लिहाज़ा इसके लिये तबियत के अंदर बुअद महसूस ना करें। बहरहाल मौलाना फराही रहि० ने नज़्मे क़ुरान को अपना ख़ुसूसी मौज़ू (विषय) बनाया। वह तफ़्सीर क़ुरान लिखना चाहते थे मगर लिख नहीं सके, सिर्फ़ चंद सूरतों की तफासीर उन्होंने लिखी हैं। उनमें से भी बाज़ ना-मुकम्मल हैं। वह एक मुफक्किर क़िस्म के इंसान थे मुसन्निफ़ क़िस्म के इंसान नहीं थे। मुफक्किर इंसान मुसलसल ग़ौर करता रहता है और उसके सामने नये-नये पहलू आते रहते हैं। चुनाँचे उनका तस्नीफ़ व तालीफ़ का अंदाज़ यह था कि उन्होंने मुख़्तलिफ़ मौज़ुआत (विषयों) पर फ़ाइल खोल रखे थे। जब कोई नया ख़्याल आता तो काग़ज़ पर लिख कर मुतालक़ा फ़ाइल में शामिल कर लेते। यही वजह है कि उनकी अक्सर

तसानीफ़ उनकी वफ़ात के बाद किताबी शक्ल में शाया (छपी) हुई हैं, जबकि उनके ज़माने में वह सिर्फ़ फ़ाइलों की शक़्ल में थीं और किसी शय के छपने की नौबत आई ही नहीं। सोच-विचार का तसलसुल उनके आख़िरी लम्हें तक जारी रहा। "मुक़द्दमा निज़ामुल क़ुरान" वाक़िअतन उनके फ़िक्र और सोच की सही नुमाइन्दगी (प्रतिनिधित्व) करता है। इस ज़िमन में उनके शागिर्द रशीद अमीन अहसन इस्लाही साहब ने बात को आगे बढ़ाया है। नज़्मे क़ुरान के बारे में इन हज़रात के नतीजे फ़िक्र के चंद निकात मुलाहिज़ा हों:

(i) हर सूरत का एक अमूद (केंद्रीय विचार) है, जैसे एक हार की डोरी है उसमें मोती पिरोये हुए हैं। यह डोरी देखने वालों को नज़र नहीं आती, मोती नज़र आते हैं, लेकिन उनको बाँधने वाली शय तो डोरी है जिसमें वह पिरोये गए हैं। इसी तरह हर सूरत का एक मरकज़ी मज़मून या अमूद (केंद्रीय विचार) है जिसके साथ उसकी तमाम आयतें मरबूत (जुड़ी) हैं।

(ii) क़ुरान मजीद की अक्सर सूरतें जोडों की शक़्ल में हैं और यूँ कह सकते हैं कि एक ही मज़मून का एक रुख एक सूरत में आ जाता है और उसी का दूसरा रुख़ उस जोड़े के दूसरे हिस्से में आकर मज़मून की तकमील कर देता है। मौलाना इस्लाही साहब ने भी ऐसा ही फ़रमाया है। अलबत्ता जहाँ तक इस उसूल के इन्तबाक़ (अनुपालन) का ताल्लुक़ है इसमें इख़्तिलाफ़ की गुँजाइश है और जो हज़रात मेरे दरसों में तसलसुल (sequence) से कसरत करत रहे हैं उन्हें मालूम है कि मुझे बहुत से मौक़ों पर इस्लाही साहब से इख़्तिलाफ़ भी है, लेकिन उसूलन यह बात दुरुस्त है कि क़ुरान मजीद की अक्सर सूरतें जोड़ों की शक़्ल में हैं। ताहम बाज़ सूरतें मुनफ़रिद हैसियत की मालिक हैं, उनका जोड़ा उस जगह पर मौजूद नहीं है। अग़रचे मैंने तहक़ीक़ की है कि अक्सर व बेशतर ऐसी सूरतों के जोड़े भी मायनन क़ुरान में मौजूद हैं। मसलन सूरह अल् नूर तन्हा और मुनफ़रिद है, सूरह अल् अहज़ाब भी मुनफ़रिद और तन्हा है, लेकिन यह दोनों आपस में जोड़ा हैं और इनमें जोड़ा होने की निस्बत ब-तमाम व कमाल मौजूद है। इसी तरह सूरह अल् फ़ातिहा मुनफ़रिद (अनोखी) है। वह तो इस ऐतबार से भी मुनफ़रिद (अनोखी) है कि वाक़िअतन उसका ब-तमाम व कमाल जोड़ा बनना मुमकिन नहीं, वह अपनी जगह पर क़ुरान हकीम और سَبْعًا مِنَ الْمَثَانِی है, लेकिन सूरह अन्नास में ग़ौर करें तो मायनन यह सूरत सूरह अल् फ़ातिहा का जोड़ा बनती है। इसलिये कि सूरह अल् फ़ातिहा में इस्तआनत (मदद) है और सूरह अन्नास में इस्तआज़ह (शरण)। फिर सूरतुल फ़ातिहा में अल्लाह तआला की तीन शानें रब, मालिक, इलाह हैं और यही तीन शानें सूरतुन्नास में भी हैं।

(iii) तिलावत के लिये सात मंज़िलों के अलावा क़ुरान हकीम में सूरतों की एक मायनवी ग्रुपिंग भी है। इस ऐतबार से भी सूरतों के सात ग्रुप हैं और हर ग्रुप में एक मक्की और मदनी दोनों तरह की सूरतें शामिल हैं। हर ग्रुप में एक या एक से ज़्यादा मक्की सूरतें और उसके बाद एक या एक से ज़्यादा मदनी सूरतें हैं। एक ग्रुप की मक्की और मदनी सूरतों में वही निस्बत है जो एक जोड़े की दो सूरतों में होती है। जैसे एक मज़मून की तकमील एक जोड़े की सूरतों में होती है, यानि एक रुख़ एक फ़र्द में और दूसरा रुख़ दूसरे फ़र्द में, इसी तरह हर ग्रुप का एक मरकज़ी मज़मून और अमूद (केंद्रीय विचार) है, जिसका एक रुख़ मक्की सूरतों में और दूसरा रुख़ मदनी सूरतों में आ जाता है। इस तरह ग़ौर व फ़िक्र और तदब्बुर करके नये मैदान सामने आ रहे हैं। जो इन्सान भी इनका अमूद मुअय्यन करने में ग़ौरो फ़िक्र करेगा वह किसी नतीजे पर पहुँचेगा, अग़रचे अमूद मुअय्यन करने में इख़्तिलाफ़ हो सकता है। सबसे बड़ा ग्रुप पहला है जिसमें मक्की सूरत सिर्फ़ एक यानि सूरतुल फ़ातिहा जबकि मदनी सूरतें चार हैं जो सवा छः पारों पर फैली हुई है, यानि सूरतुल बक़रह, आले इमरान, अल् निसा और अल् मायदा। दूसरा ग्रुप इस ऐतबार से मुतवाज़िन है कि उसमें दो सूरतें मक्की और दो मदनी हैं। सूरतुल अनआम और सूरतुल आराफ़ मक्की हैं जबकि सूरतुल अन्फ़ाल और सूरतुल तौबा मदनी हैं। तीसरे ग्रुप में सूरह युनुस से सूरह अल् मोमिनून तक चौदह मक्की सूरतें हैं। यह तक़रीबन सात पारे बन जाते हैं। इसके बाद एक मदनी सूरत है और वह सूरतुल नूर है। इसके बाद चौथे ग्रुप में सूरतुल् फ़ुरक़ान से सूरतुल सज्दा तक मक्कियात हैं, फिर एक मदनी सूरत सूरतुल अहज़ाब है। पाँचवें ग्रुप में सूरह सबा से लेकर सूरतुल अहक़ाफ़ तक मक्कियात हैं, फिर तीन मदनी सूरतें हैं, सूरह मुहम्मद, सूरतुल फ़तह और सूरह अल् हुजरात हैं। इसके बाद छठे ग्रुप में फिर सूरह क़ाफ़ से सूरतुल वाक़िया तक सात मक्कियात हैं जिनके बाद फिर दस मदनियात हैं सूरह अल् हदीद से सूरह अल् तहरीम तक। इसी तरह सातवें ग्रुप में भी पहले मक्की सूरतें हैं

और आख़िर में दो मदनी सूरतें हैं। इस तरह यह सात ग्रुप बनते हैं। यह ग्रुप मौलाना इस्लाही साहब के मुरत्तब करदा हैं, इनमें पहला और आख़िरी ग्रुप इस ऐतबार से अक्सी निस्बत रखते हैं कि पहले ग्रुप में सिर्फ़ एक सूरत सूरह फ़ातिहा मक्की है और सवा छ: पारों पर मुश्तमिल चार तवील-तरीन सूरतें मदनी हैं, जबकि आख़िरी ग्रुप में सूरतल मुल्क से लेकर पूरे दो पारे तक़रीबन मक्कियात पर मुश्तमिल हैं, आख़िरी में सिर्फ़ दो सूरतें "मौअव्वज़तैन" मदनी हैं। यानि यहाँ निस्बत बिल्कुल अक्सी है। लेकिन दूसरा ग्रुप भी मुतवाज़िन है, यानि दो सूरतें मक्की, दो मदनी-- और छठा ग्रुप भी मुतवाज़िन है कि उसमें सात सूरतें मक्की हैं (सूरह क़ाफ़ से सूरह वाक़िया तक) जबकि दस सूरतें मदनी हैं (सूरह अल् हदीद से सूरह अल् तहरीम तक) लेकिन हुज्म (volume) के ऐतबार से तक़रीबन बराबर हैं। यह भी ग़ौरो फ़िक्र और सोच-विचार का एक मौज़ू है और इससे भी क़ुरान मजीद की हिकमत व हिदायत और उसके इल्म के नये-नये गोशे (corner) सामने आ रहे हैं।

क़ुरान हकीम की सूरतों के जोड़े होने का मामला क़ुरान मजीद में बाज़ जगहों पर तो बहुत ही नुमाया है। "अल् मौअव्वज़तैन" आख़िरी दो सूरतें हैं जो तअव्वुज़ पर मुश्तमिल हैं: {قُلْ اَعُوْذُ بِرَبِّ الْفَلَقِ} और {قُلْ اَعُوْذُ بِرَبِّ النَّاسِ} इसी तरह "अज़ ज़हरावैन - दो निहायत ताबनाक सूरतें" अल् बक़रह और आले इमरान हैं। हुज़ूर ﷺ इन दोनों को भी एक नाम दिया जैसे आख़िरी दो सूरतों को एक नाम दिया। इसी तरह सूरतुल मुज़म्मिल और सूरतुल मुदस्सिर में और सूरह अद् दुहा और सूरह अलम नशरह में मायनवी रब्त है। सूरह अल् तहरीम और सूरह अत् तलाक़ में तो यह रब्त बहुत ही नुमाया है। दोनों सूरतों का आग़ाज़ बिल्कुल एक जैसा है: {يٰۤاَيُّهَا النَّبِيُّ اِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ} और {يٰۤاَيُّهَا النَّبِيُّ لِمَ تُحَرِّمُ مَآ اَحَلَّ اللّٰهُ لَكَ} मज़मून के अंदर भी बड़ी गहरी मुनासबत है। इसके बाद सूरह अस्सफ़ और सूरतुल जुमा का जोड़ा है। सूरह अस्सफ़ سَبَّحَ لِلّٰهِ से और सूरतुल जुमा يُسَبِّحُ لِلّٰهِ के अल्फ़ाज़ से शुरु हो रही हैं। सूरह अस्सफ़ की मरकज़ी आयत जो रसूल ﷺ के मक़सदे बेअसत को मुअय्यन कर रही है {هُوَ الَّذِيْۤ اَرْسَلَ رَسُوْلَهٗ بِالْهُدٰى وَدِيْنِ الْحَقِّ لِيُظْهِرَهٗ عَلَى الدِّيْنِ كُلِّهٖ} (आयत:9) है, जबकि सूरतुल जुमा की मरकज़ी आयत जो हुज़ूर ﷺ के इन्क़लाब का असासी मिन्हाज मुअय्यन कर रही है {هُوَ الَّذِيْ بَعَثَ فِي الْاُمِّيّٖنَ رَسُوْلًا مِّنْهُمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِهٖ وَيُزَكِّيْهِمْ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ} (आयत:2) है। बहरहाल सूरतों का जोड़ा होना, सूरतों का ग्रुप की शक्ल में होना, इन ग्रुप्स का अपना एक अमूद और एक मरकज़ी मज़मून होना, फिर इसके दो रुख़ बन जाना जो इसकी मक्कियात और मदनियात में आते हैं, क़ुरान मजीद के इल्म व हिकमत के ख़ज़ाने के वह दरवाज़े हैं जो अब खुले हैं। इस तरह दरवाज़े हर दौर में खुलते रहे हैं और आइन्दा भी खुलते रहेंगे। चुनाँचे क़ुरान मजीद पर तज़क्कुर (याद) और तदब्बुर (सोच-विचार) तसलसुल (निरंतर) के साथ जारी रहना चाहिये।

पीछे सात मंज़िलों और सात अहज़ाब का ज़िक्र हो चुका। अब मक्की और मदनी सूरतों के सात ग्रुप्स का बयान हुआ। यह दोनों क़िस्म के ग्रुप दो जगह पर आकर मिल जाते हैं। पहली मंज़िल तो सूरह अल् निसा पर ख़त्म हो जाती है और पहला ग्रुप सूरह मायदा पर ख़त्म होता है। सूरह अल् तौबा पर दूसरी मंज़िल भी ख़त्म होती है और दूसरा ग्रुप भी ख़त्म होता है। सूरह यूनुस से तीसरी मंज़िल शुरु होती है और तीसरा ग्रुप भी शुरु होता है। इसी तरह एक मक़ाम और है। सूरह क़ाफ़ से आख़िरी मंज़िल भी शुरु हो रही है और उसी से छठा ग्रुप भी शुरु हो रहा है। सूरह क़ाफ़ छठे ग्रुप की पहली मक्की सूरत है। यह छठा ग्रुप सूरह अल् तहरीम पर ख़त्म हो जाता है और आख़िरी ग्रुप सूरतुल मुल्क से शुरु होता है, लेकिन जो मंज़िल सूरह क़ाफ़ से शुरु होती है वह सूरह अन्नास तक एक ही है।

यह वह चीज़ें हैं जो मालूमात के दर्जे में सामने रहें और ज़हन में मौजूद रहें तो इंसान जब ग़ौर करता है तो इनके हवाले से बाज़ अवक़ात हिकमत के बड़े क़ीमती मोती हाथ लगते हैं।

❀ ❀ ❀

बाब चाहरम (चौथा)

तद्वीने क़ुरान (क़ुरान की परिपूर्ति)

क़ुरान मजीद की तद्वीन के बारे में यह बात बिल्कुल वाज़ेह है कि यह रसूल अल्लाह ﷺ की हयाते तैय्यबा में मुकम्मल हो गयी थी। किसी शायर का दीवान उसकी गज़लों और कसीदों पर मुश्तमिल होता है। क़ुरान मजीद अल्लाह का कलाम है और उसकी भी तद्वीन हुई है। यह भी एक दीवान की शक्ल में है, इसको भी जमा किया गया है। जमा व तद्वीने क़ुरान अपनी जगह पर बहुत अहम मौज़ू (विषय) है। इसके बारे में ख़ास मालूमात हमारे ज़हनों में हर वक़्त मुसतहज़र (याद) रहनी चाहिये, क्योंकि आमतौर पर अहले तशय्यो के हवाले से हमारे यहाँ जो चीज़ें मशहूर हैं (वल्लाहु आलम वह हक़ीक़त पर मब्नी हैं या महज़ मुख़ालिफ़ीन का प्रोपेगंडा है) इनकी वजह से लोगों के ज़हनों में शुबहात पैदा हुए हैं और वह काफ़ी बड़े हलक़े के अंदर फैले हैं।

हमारे यहाँ जुमे के ख़ुत्बे जो मुरत्तब किये गए हैं और आम ख़तीब पढ़ते हैं, उनमें भी ऐसे अल्फ़ाज़ आ गये हैं जो बहुत बड़े-बड़े मुग़ालतों की बुनियाद बन गये हैं। हो सकता है किसी दुश्मने इस्लाम ने, किसी बातिनी ने, किसी ग़ाली क़िस्म के राफ्दी ने यह अल्फ़ाज़ शामिल कर दिये हों। बज़ाहिर तारीफ़ हो रही है मगर हक़ीक़त में तनक़ीस हो रही है और दीन की जड़ काटी जा रही है। इसकी मिसाल भी इसी तद्वीने के ज़ेल (below) में आयेगी।

क़ुरान मजीद की तद्वीन तीन मराहिल (steps) में मुकम्मल हुई। पहली तद्वीन रसूल अल्लाह ﷺ की हयाते तैय्यबा में हो गई थी, लेकिन वह तद्वीन उस शक्ल में थी कि सूरतें मुअय्यन हो गईं, सूरतों की तरतीब मुअय्यन हो गई। किताबी शक्ल में क़ुरान मजीद हुज़ूर ﷺ की हयाते तैय्यबा में मौजूद नहीं था। लोगों के पास मुख्तलिफ हिस्सों में लिखा हुआ क़ुरान था। लोग ऊँट के शाने (shoulder) की हड्डी (जो काफी चौड़ी होती है) पर लिखते थे या कुल्हे की हड्डी पर लिखा जाता था। ऊँट की पसलियाँ (ribs) भी बड़ी चौड़ी होती हैं यह भी इस मक़सद के लिये इस्तेमाल होती थीं। कागज़ उस ज़माने में कहाँ था, कपड़ा ज़्यादा दस्तयाब था, लिहाज़ा कपड़े पर भी लिखा जाता था। इसी तरह छोटे-छोटे पत्थरों पर भी आयात लिख लेते थे। याद रहे कि क़ुरान मजीद की असल हैसीयत "कौल" की है: {اِنَّهٗ لَقَوۡلُ رَسُوۡلٍ كَرِيۡمٍ ۙ} (अल् हाक्क़ा:40) ना तो यह हुज़ूर ﷺ को लिखी हुई शक्ल में दिया गया ना हुज़ूर ﷺ ने लिखी हुई शक्ल में उम्मत को दिया। हुज़ूर ﷺ को भी यह पढ़ाया गया है। अज़ रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी:

سَنُقۡرِئُكَ فَلَا تَنۡسٰٓى

"हम आपको पढ़ायेंगे, फिर आप भूलेंगे नहीं।" (अल् आला:6)

यह अव्वलन क़ौले जिब्राईल (अलै०) फिर क़ौले मुहम्मद ﷺ बन कर लोगों के सामने आया। जिब्राईल (अलै०) से हुज़ूर ﷺ ने सुना, हुज़ूर ﷺ से सहाबा (रज़ि०) ने सुना। चुनाँचे असल में तो क़ुरान पढ़ी जाने वाली शय है। लेकिन जैसे-जैसे क़ुरान नाज़िल होता आप ﷺ उसे लिखवा भी लेते। बाज़ सहाबा किराम (रज़ि०) किताबते वही की ज़िम्मेदारी पर मामूर (तैनात) थे। और हुज़ूर ﷺ ने इस बात का हुक्म भी दे दिया था कि ((لَا تَكْتُبُوْا عَنِّىْ غَيْرَ الْقُرْآنِ)) "मेरी तरफ़ से सिवाये क़ुरान के कुछ ना लिखो।"

अहादीस को लिखने से हुज़ूर ﷺ ने मना फ़रमा दिया था ताकि कहीं अल्लाह और रसूल ﷺ का कलाम गडमड ना हो जाये, सिर्फ़ क़ुरान मजीद को ही लिखने का हुक्म दिया। लेकिन असल क़ुरान अल्लाह ताला ने हुज़ूर ﷺ के सीने में जमा किया और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ ने सहाबा (रज़ि०) के सीनों में जमा कर दिया। वह क़ौल से क़ौल की शक्ल में गया है, लोगों ने हुज़ूर ﷺ के दहन मुबारक से सीखा है। बहरहाल रसूल ﷺ के दौर में लिखा हुआ क़ुरान भी था लेकिन किताबी शक्ल में जमाशुदा नहीं था। जमाशुदा शक्ल में सिर्फ सीनों में था, हुफ्फाज़ को याद था। उन्हें याद था कि क़ुरान इस तरतीब के साथ है। इसके लिये सबसे बड़ी दलील यह है कि सही रिवायात के मुताबिक़ हर रमज़ानुल मुबारक में जितना क़ुरान उस वक़्त तक नाज़िल हो चुका था, हुज़ूर ﷺ और हज़रत जिब्राइल (अलै०) उसका दौर करते थे, जैसा कि हमारे यहाँ रमज़ान के आने से पहले हुफ्फाज़ दौर करते हैं, एक हाफ़िज़ सुनाता है, दूसरा सुनता है ताकि तरावीह में सुनाने के लिये ताज़ा हो जाये। तो रमज़ानुल मुबारक में हुज़ूर ﷺ और हज़रत जिब्राईल (अलै०) मुज़ाकरह करते थे, क़ुरान मजीद का दौर होता था। आप ﷺ की

ज़िन्दगी के आख़री रमज़ान में आप ﷺ ने जिब्राईल (अलै०) से क़ुरान मजीद का दो मरतबा मुक्ममल दौर किया। चुनाँचे जहाँ तक हाफ़ज़े में और सीने में क़ुरान का मुदव्विन हो जाना है वह तो नबी अकरम ﷺ की हयात तैय्यबा के दौरान मुक्ममल हो गया था।

तद्वीने क़ुरान का दूसरा मरहला हज़रत अबुबकर (रज़ि०) के अहदे ख़िलाफ़त में आया जब मुरतद्दीन (वह शख्स जो इस्लाम क़बूल करने के बाद फिर दोबारा काफ़िर, यहूद या इसाई हो जाये) और मानिईन ज़कात (ज़कात देने से मना करने वाले) से जंगें हुईं। जंगे यमामा में तो बहुत बड़ी तादाद में सहाबा (रज़ि०) शहीद हुए। यह बड़ी खूंरेज़ जंग थी और इसमें कसीर तादाद में हुफ्फाज़े क़ुरान शहीद हो गए तो तशवीश पैदा हुई और यह ख्याल आया कि इस क़ुरान को अब किताबी शक्ल में जमा कर लेना चाहिये। यह ख्याल सबसे पहले हज़रत उमर (रज़ि०) के दिल में आया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने यह बात हज़रत अबुबकर (रज़ि०) से कही तो वो बड़े मुतरद्दिद (परेशान) हुए कि मैं वह काम कैसे करूँ जो हुज़ूर ﷺ ने नहीं किया! लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) इसरार (आग्रह) करते रहे और रफ्ता-रफ्ता हज़रत अबुबकर (रज़ि०) को भी इस पर इन्शराहे सद्र हो गया (दिल ने मान लिया)। उन्होंने हज़रत उमर (रज़ि०) से कहा कि अब तुम्हारी इस बात के लिये अल्लाह ने मेरे सीने को कुशादाह (बड़ा) कर दिया है। इसके बाद यह ज़िम्मेदारी हज़रत ज़ेद बिन साबित (रज़ि०) पर डाली गयी जो हुज़ूर ﷺ के ज़माने में कातिबे वही थे। आप ﷺ के चंद ख़ास सहाबा जो किताबते वही पर मामूर (तैनात) थे, उनमें हज़रत ज़ेद बिन साबित (रज़ि०) बहुत मारूफ़ (मशहूर) थे। उनसे हज़रत अबुबकर (रज़ि०) ने फ़रमाया कि तुम यह काम करो, और उनके साथ कुछ और सहाबा की एक कमैटी तशकील दे दी (गठित कर दी)। वह भी पहले बहुत मुतरद्दिद रहे। उनकी दलील भी यह थी कि जो काम हुज़ूर ﷺ ने नहीं किया वह मैं कैसे करूँ! इलावज़ह (इससे बड़ी बात) यह तो पहाड़ जैसी ज़िम्मेदारी है, यह मैं कैसे उठाऊँ! लेकिन जब हज़रात अबुबकर और उमर (रज़ि०) दोनो का इसरार (आग्रह) हुआ तो उनका भी सीना खुल गया। फिर जिन सहाबा (रज़ि०) के पास क़ुरान हकीम का जो हिस्सा भी लिखी हुई शक्ल में था, उनसे लिया गया और मुख्तलिफ शहादतों और हुफ्फाज़ की मदद से अहदे सिद्दीक़ी में क़ुरान पाक को एक किताब की शक्ल में मुरत्तब (जमा) कर लिया गया। याद रहे कि एक किताब की शक्ल में भी क़ुरान मजीद की तद्वीन रसूल अल्लाह ﷺ के इन्तेक़ाल के दो साल के अंदर-अंदर मुकम्मल हो गई। हज़रत अबुबकर (रज़ि०) का अहदे ख़िलाफ़त कुल सवा दो बरस है।

हज़रत अबुबकर (रज़ि०) की मजलिसे शूरा में यह मसला भी ज़ेरे गौर आया कि हुज़ूर ﷺ के ज़माने में तो क़ुरान एक जिल्द के माबैन जमा नहीं किया गया, लिहाज़ा इसका नाम क्या रखा जाए! एक तजवीज़ यह आयी कि इसे भी इन्जील का नाम दिया जाये। एक राय यह दी गयी कि इसका नाम “सफ़र” हो, इसलिये कि सफ़र का लफ्ज़ तौरात की किताबों के लिये मारूफ़ चला आ रहा था, जैसे सफ़र अय्यूब एक किताब थी। तो सफ़र किताब को कहते हैं जिस की जमा “असफ़ार” है और यह लफ्ज़ क़ुरान में भी आया है। सफ़र का लफ्ज़ी मतलब है रोशनी देने वाली। फिर अबदुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) ने तजवीज़ पेश की कि इसका नाम “मुस्हफ़” होना चाहिये। उन्होंने कहा कि मेरा आना-जाना हब्शा होता है, वहाँ के लोगों के पास एक किताब है और वह उसे मुस्हफ़ कहते हैं। अब “मुस्हफ़” के लफ्ज़ पर इत्तेफ़ाक़ और इज्माअ हो गया। चुनाँचे क़ुरान के लिये हज़रत अबुबकर (रज़ि०) के अहदे ख़िलाफ़त में हज़रत अबदुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) की तजवीज़ पर मुस्हफ़ नाम रखा गया और इस पर लोगों का इज्माअ हुआ। तद्वीने क़ुरान का यह दूसरा मरहला है।

क़ुरान हकीम की तिलावत के ज़िमन में एक मामला चला आ रहा था, जैसा कि हदीस में आता है कि क़ुरान मजीद सात हुरूफ़ पर नाज़िल हुआ था। अरबों की ज़बान तो एक थी लेकिन बोलियाँ मुख़्तलिफ़ थीं, अल्फाज़ के लहजे मुख़्तलिफ़ थे। तो सब लोगों को इजाज़त दी गई थी कि वह अपने-अपने लहजे के अंदर क़ुरान पढ़ लिया करें ताकि सहूलत रहे, वरना बड़ी मशक़्क़त की ज़रूरत थी कि सब लोग अपने लहजे बदलें। यह वह ज़माना था कि इन्क़लाबी जद्दो-जहद का tempo इतना तेज़ था कि इन कामों के लिये ज़्यादा फ़ुरसत नहीं थी कि इसके लिये बाक़ायदा इदारे क़ायम हों, मुख़्तलिफ़ जगहों से लोग आयें और अपना लहजा बदल कर क़ुरैश के लहजे के मुताबिक़ करें, हिजाज़ी लहजा इख़्तियार करें। चुनाँचे इजाज़त दी गई थी कि अपने-अपने लहजों में पढ़ लें। मुख़्तलिफ़ लहजों में पढ़ने के साथ कुछ लफ्ज़ी फ़र्क़ भी आने लगे। हज़रत उस्मान (रज़ि०) के ज़माने तक पहुँचते-पहुँचते नौबत यह आ गई कि मुख़्तलिफ़ लहजों में लफ्ज़ी फ़र्क़ के साथ भी क़ुरान पढ़ा जाने लगा। कोई

शख़्स क़ुरान पढ़ रहा होता, दूसरा कहता कि यह गलत पढ़ रहा है, यह यूँ नही है, जैसे मैं पढ़ रहा हूँ वह सही है। इस पर उस जज़्बाती क़ौम के अंदर तलवारें निकल आती थीं। अंदेशा हुआ कि अगर इस तरह से ये बात फैल गई तो क़ुरान का कोई एक टेक्स्ट (text) मुत्तफ़िक़ अलैह नही रहेगा। उम्मत को जमा करने वाली शय तो यह क़ुरान ही है, इसमें लफ्ज़ी फर्क़ के नतीजे में दाइमी (अविनाशी) इफ़तेराक़ (विभाजन) व इन्तेशार (गड़बड़) पैदा हो जायेगा। चुनाँचे हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने सहाबा (रज़ि०) के मशवरे से तय किया कि क़ुरान का एक टेक्स्ट (text) तैयार किया जाये। इस टेक्स्ट के लिये लफ्ज़ "रस्म" है। रस्मुल ख़त का लफ्ज़ हम इस्तेमाल करते हैं। "ا ب ت" हुरूफ़ है, लेकिन अरबी में लिखे जाऐंगे तो इनका रस्मुल ख़त कुछ और है, उर्दू में लिखे जाऐंगे तो इनकी शक्ल और है। हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने एक रस्मुल ख़त और एक टेक्स्ट पर क़ुरान जमा किया। उन्होंने भी एक कमेटी बनाई और हुक्म दे दिया गया कि तमाम लहजों को रद्द करके क़ुरैश के लहजे पर क़ुरान का टेक्स्ट तैयार किया जाये जो मुत्तफ़िक़ अलैह टेक्स्ट होगा। चुनाँचे इस कमेटी ने बड़ी मेहनते शाक्क़ा से इस काम की तकमील की। इस तरह क़ुरान का रस्मुल ख़त मुअय्यन हो गया और मुत्तफ़िक़ अलैह टेक्स्ट वजूद में आ गया। रस्मे उस्मानी के मुताबिक़ सूरह फ़ातिहा में "ملک یوم الدین" लिखा जायेगा, लिखने की शक्ल यह नहीं होगी: "مالک یوم الدین"। एक क़िरात में चूँकि مَلِکِ भी है तो "ملک" को "مٰلِکِ" भी पढ़ा जा सकता है और "مَلِکِ" भी। तो यह बहुत बड़ा कारनामा है जो हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने सहाबा (रज़ि०) के मशवरे से सरअंजाम दिया कि क़ुरान का एक रस्मुल ख़त मुअय्यन हो गया और मसाहिफ़े उस्मान (रज़ि०) तैयार हो गये। बाज़ रिवायात के मुताबिक़ उसकी चार नक़ूल (copies) तैयार की गईं, बाज़ रिवायात के मुताबिक़ पाँच और बाज़ में सात का अदद भी मिलता है। उनमें से एक मुस्हफ official version के तौर पर मदीने में रखा गया और बाक़ी नक़लें मक्का मुकर्रमा, दमिश्क़, कूफ़ा, यमन, बहरीन और बसरह को भेज दी गईं। उनमें से कोई-कोई नक़ल अब भी मौजूद है। तुर्की और ताशक़न्द में वह "मुसाहिफ़े उस्मानी" मौजूद हैं जो हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने तैयार कराये थे।

यहाँ एक अहम बात तवज्जोह तलब है कि हमारे यहाँ ख़ुत्बाते जुमा में बाज़ ख़तीब ये जुमला पढ़ जाते हैं: " جامعُ آیاتِ القرآن عثمان بن عفان رضی اللہ عنہ" यहाँ हम-क़ाफ़िया अल्फ़ाज़ जमा करके सौती आहंग के साथ एक ख़ास अन्दाज़ पैदा किया गया है, लेकिन यह अल्फ़ाज़ इस क़दर गलत और इतने गुमराहकुन हैं कि इससे यह तसव्वुर पैदा होता है कि आयाते क़ुरानिया को सबसे पहले हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने जमा किया। यह बात क़ुरान पर से ऐतमाद को हटा देने वाली है। आयाते क़ुरानिया तो रसूल अल्लाह ﷺ के ज़माने में जमा हो चुकी थीं, सूरतें हुज़ूर ﷺ के ज़माने में वजूद में आ चुकी थीं, सूरतों की तद्वीन ही नहीं तरतीब भी हुज़ूर ﷺ के ज़माने में अमल में आ चुकी थी। किताबी शक्ल में क़ुरान अबुबकर (रज़ि०) के ज़माने में जमा हुआ। हज़रत उस्मान (रज़ि०) और अबुबकर (रज़ि०) के ज़माने में दस-पन्द्रह साल का फसल है। अगर "جامعُ آیاتِ القرآن" हज़रत उस्मान (रज़ि०) को क़रार दिया जाये तो कोई शख़्स कह सकता है कि क़ुरान की तद्वीन हुज़ूर ﷺ के पन्द्रह या बीस साल बाद हुई है। हज़रत उस्मान (रज़ि०) का अहदे ख़िलाफ़त बारह बरस है और हुज़ूर ﷺ के इन्तेक़ाल के 24 बरस के बाद उनका इन्तेक़ाल हुआ। तो इस तरह क़ुरान के मतन (text) के बारे में शुकूक व शुबहात पैदा किये जा सकते हैं, जबकि हक़ीक़त यह है कि हज़रत उस्मान (रज़ि०) आयाते क़ुरानी के जमा करने वाले नहीं हैं बल्कि उम्मत को क़ुरान के एक टेक्स्ट और रस्मुल ख़त पर जमा करने वाले हैं। इसलिये आज दुनिया में जो मुस्हफ़ मौजूद हैं यह "मुस्हफ़े उस्मान" कहलाता है। इसका नाम "मुस्हफ़" हज़रत अबुबकर (रज़ि०) ने रखा था और मुस्हफ़े उस्मान में रस्मुल ख़त और टेक्स्ट मुअय्यन हो गया कि अब क़ुरान इसी तरीक़े से लिखा जायेगा और यही पूरी दुनिया के अंदर official टेक्स्ट है।

हमारे यहाँ अक्सर व बेशतर क़ुरान पाक की इशाअत (प्रकाशन) के इदारे रस्मे उस्मानी का पूरा अहतमाम नहीं करते और इस ऐतबार से उनमें रस्म की गलतियाँ भी आ जाती हैं, इसलिये कि उनके सामने अपने-अपने मफ़ादात (फ़ायदे) होते हैं यानी कम ख़र्च से ज़्यादा नफ़ा हासिल करने की कोशिश---- लेकिन अब सऊदी हुकूमत ने इसका अहतमाम करके बड़ी नेकी कमाई है। क़ुरान मजीद की हिफाज़त के हवाले से एक नेकी मिस्र ने कमाई थी। जब इस्राईल ने क़िराअते क़ुरान मजीद के अन्दर तहरीफ़ करके उसको आम करने की कोशिश की तो हुकूमते मिस्र ने अपने चोटी के क़ुर्राअ, क़ारी महमूद ख़लील हुसरी और अब्दुल बासित अब्दुस्समद से पूरा क़ुरान मजीद मुख्तलिफ़ क़िरातों में तिलावत कराया और उनके केसिट्स तैयार करके दुनिया में फैला दिये कि अब गोया वह रेफ़रेंस का काम देंगे। उनके होते हुए अब किसी के

लिये मुमकिन नहीं है कि इस तरह क़िरात के हवाले से क़ुरान में कोई तहरीफ़ कर सके। इसी तरह सऊदी अरब की हुकूमत ने करोड़ों रूपये के ख़र्च से बहुत बड़ी फाउंडेशन बनाई है, जिसके ज़ेरे अहतमाम बड़े उम्दा आर्ट पेपर पर आलमी मैयार (quality) की बड़ी उम्दा जिल्द के साथ लाखों की तादाद में यह क़ुरान मजीद छापे जा रहे हैं, जो हज़रत उस्मान (रज़ि०) के मुअय्यन करदा रस्मुल ख़त के मुताबिक़ हैं।

बहरहाल हज़रत उस्मान (रज़ि०) "جامع آيات القرآن" की बजाये "جامع الأُمَّۃِ علىٰ رسمٍ واحدٍ" यानी उम्मत को क़ुरान हकीम के एक रस्मुल ख़त पर जमा करने वाले हैं। यह तद्वीन भी हुज़ूर ﷺ के इन्तेक़ाल के 24 बरस के अंदर मुकम्मल हो गई। यही वजह है कि दुनिया मानती है और तमाम मुस्तशरिक़ (orientalist) मानते हैं कि जितना ख़ालिस मतन (pure text) क़ुरान का दुनिया में मौजूद है, किसी दूसरी किताब का मौजूद नहीं है। यह बात "الفضل ما شهدت بہ الاعداء" का मिस्दाक़ है, यानी फ़ज़ीलत तो वह है, जिसको दुश्मन भी तस्लीम करने पर मजबूर हो जाये। और यह किसी शय की हक्क़ानियत (सत्यता) के लिये आख़री सबूत होता है। पस यह बात पूरी दुनिया में मुसल्लम (accepted) है कि क़ुरान हकीम का टेक्स्ट महफ़ूज़ है या जितना महफ़ूज़ टेक्स्ट क़ुरान का है इतना और किसी किताब का नहीं है। यानी क़िरात के फ़र्क़ भी रिकॉर्ड पर हैं, सबाअ (सात) क़िरात और अशरा (दस) क़िरात रिकॉर्ड पर हैं, उनमें भी एक-एक हर्फ़ का मामला मदवन (recorded) है कि फ़लाँ क़िरात में यह लफ्ज़ ज़बर के साथ पढ़ा गया है या ज़ेर के साथ। और यह तमाम official क़िरात हैं। बाक़ी जहाँ तक रस्मुल ख़त का ताल्लुक़ है उसका टेक्स्ट हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने मुअय्यन कर दिया। उम्मते मुस्लिमा पर यह उनका बहुत बड़ा अहसान है। क़ुरान हकीम की compilation और उसकी तद्वीन के मुताल्लिक़ यह चीज़ें ज़हन में रहनी चाहिये। यह हक़ाईक़ सामने ना हों तो कुछ लोग ज़हनों में शुकूक व शुबहात पैदा कर सकते हैं।

❀ ❀ ❀

<u>बाब पन्जम (पाँचवा)</u>

क़ुरान मजीद का मौज़ू

अब हम अगली बहस पर आते हैं कि क़ुरान का मौज़ू क्या है। क्या क़ुरान फ़लसफ़े की किताब है? क्या यह साइंस की किताब है? क्या यह जियोलॉजी या फिज़िक्स की किताब है? किस क़िस्म की किताब है? तो पहली बात यह समझिये कि क़ुरान का मौज़ू है इंसान--- लेकिन इंसान की एनाटोमी, उसकी फिज़ियोलॉजी या anthropology नहीं है, बल्कि इंसान की हिदायत। यह हिदायत का लफ़्ज़ क़ुरान मजीद के लिये बुनियादी हैसियत रखता है। चुनाँचे देखिये सूरतुल बक़रह के शुरु ही में फ़रमाया: {هُدًى لِّلۡمُتَّقِيۡنَ} (आयत:2) फिर उसके वस्त (बीच) में इर्शाद हुआ: {هُدًى لِّلنَّاسِ} (आयत:185) यानि पूरे नोए इंसानी के लिये हिदायत। सूरह यूनुस में फ़रमाया: {هُدًى وَّرَحۡمَةٌ لِّلۡمُؤۡمِنِيۡنَ ۝} सूरह लुक़मान में फ़रमाया: {هُدًى وَّرَحۡمَةً لِّلۡمُحۡسِنِيۡنَ} (आयत:3)। सूरतुल बक़रह (आयत 97) और सूरतुल नम्ल (आयत 2) में {هُدًى وَّبُشۡرٰى لِلۡمُؤۡمِنِيۡنَ} जबकि सूरह आले इमरान में {هُدًى وَّمَوۡعِظَةٌ لِّلۡمُتَّقِيۡنَ ۝} और सूरतुल मायदा में {هُدًى وَّمَوۡعِظَةً لِّلۡمُتَّقِيۡنَ ۝} के अल्फ़ाज़ आये। मालूम हुआ कि "هُدًى" का लफ़्ज़ क़ुरान हकीम के लिये कसरत के साथ आया है। फिर यह सिर्फ़ नकरह नहीं "ال" के साथ मारफा बन कर भी कई जगह आया है। तीन मर्तबा तो इस आयत मुबारका में आया जो रसूल अल्लाह ﷺ के मक़सदे बअसत को बयान करती है: {هُوَ الَّذِيۡۤ اَرۡسَلَ رَسُوۡلَهٗ بِالۡهُدٰى وَدِيۡنِ الۡحَقِّ لِيُظۡهِرَهٗ عَلَى الدِّيۡنِ كُلِّهٖ} (अल् तौबा: 33, अल् फ़तह:28, अस् सफ़:9) هُدًى नकरह था, اَلۡهُدٰى मारफा हो गया। यानि हिदायते कामिला, हिदायते ताम्मा, हिदयाते अब्दी। इसी तरह सूरह अल् नज्म में फ़रमाया: {وَلَقَدۡ جَآءَهُمۡ مِّنۡ رَّبِّهِمُ الۡهُدٰى ۝}। सूरह अल् जिन्न का आग़ाज़ जिन्नात की एक जमात के इस क़ौल: {اِنَّا سَمِعۡنَا قُرۡاٰنًا عَجَبًا} (आयत:1) से होता है। आगे चल कर अल्फ़ाज़ आते हैं: {وَّاَنَّا لَمَّا سَمِعۡنَا الۡهُدٰۤى اٰمَنَّا بِهٖ} (आयत 13)

गोया सूरतुल जिन्न ने मुअय्यन किया कि "اَلْهُدٰى" "قُرْاٰنًا عَجَبًا" और "اَلْهُدٰى" मुतरादिफ़ (बराबर) अल्फ़ाज़ हैं। सूरह बनी इस्राईल और सूरह अल् कहफ़ में आया है:

وَمَا مَنَعَ النَّاسَ اَنْ يُّؤْمِنُوْٓا اِذْ جَآءَهُمُ الْهُدٰى

"क्या शय है जो लोगों को ईमान लाने से रोकती है जबकि उनके पास अल् हुदा आया है?" (बनी इसराइल:94, अल् कहफ़:55)

तो गोया क़ुरान का मौज़ू है इंसान की हिदायत।

अब यह बात ज़हन में रखिये कि इंसान के इल्म के दो गोशे (corner) हैं, इल्मे इंसानी दो हिस्सों में मुन्क़सिम (विभाजित) है। मशहूर कहावत है: (اَلْعِلْمُ عِلْمَانِ:عِلْمُ الْاَبْدَانْ عِلْمُ وَ الْاَدْيَانِ) एक हिस्सा है माद्दी दुनिया (Physical World) का इल्म, माद्दी हक़ाइक़ का इल्म, जो हवास (senses) के ज़रिये से हासिल होता है। देखना, सुनना, सूँघना, चखना, छूना हमारे हवासे ख़म्सा (five senses) हैं। यह तमाम सलाहियतें हैं जिनसे कुछ मालूमात हासिल होती हैं और अक़्ल का कंप्यूटर इनको प्रोसेस करता है, इनसे नतीजे निकालता है और उन्हें स्टोर कर लेता है। फिर हवास के ज़रिये से मज़ीद (ज़्यादा) कोई मालूमात हासिल होती हैं तो अब इनको भी वह प्रोसेस करके अपने साबक़ा (पिछली) "memory store" के साथ हमआहंग (compatible) करके कोई और नतीजा अख़्ज़ करता (निकालता) है। इस तरह रफ़्ता-रफ़्ता इंसान का यह इल्म बढ़ता चला जा रहा है और हम नहीं कह सकते कि यह अभी और कहाँ तक जायेगा। आज से सौ साल पहले भी इंसान तसव्वुर नहीं कर सकता था कि इंसानी इल्म वहाँ पहुँच जायेगा जहाँ आज पहुँच चुका है। यह इल्म बिल् हवास व अल् अक़्ल है और इस इल्म का वही से कोई ताल्लुक़ नहीं है। इसका ताल्लुक उस इल्मे अस्मा से है जो बिल्कुल शुरू में हज़रत आदम (अलै०) में वदीयत (रखना) कर दिया गया था और यही दुनिया में सरबुलंदी की बुनियाद है।

इल्में इंसानी के दो ग़ोशों के ज़िमन में सूरतुल बक़रह का चौथा रुकु बहुत अहम है। इल्मुल अस्मा का ज़िक्र उसके शुरू में हैं। जब अल्लाह तआला ने फ़रिश्तों से फ़रमाया कि मैं ज़मीन में एक ख़लीफ़ा बनाने वाला हूँ तो फ़रिश्तों की तरफ़ से यह बात इस्तफ़हामन पेश की गई (पूछी गयी):

اَتَجْعَلُ فِيْهَا مَنْ يُّفْسِدُ فِيْهَا وَيَسْفِكُ الدِّمَآءَ

"क्या आप उसको ज़मीन में ख़लीफा बनाएँगें जो उसमें फ़साद फैलाएगा और ख़ूँरेज़ियाँ करेगा?" (आयत:30)

फ़रिश्तों का यह अश्क़ाल इस तरह दूर किया गया:

وَعَلَّمَ اٰدَمَ الْاَسْمَآءَ كُلَّهَا

"और अल्लाह ने आदम को तमाम नाम सिखा दिये।" (आयत:31)

यह इल्मे अस्मा जो आदम को दिया गया, यही हुकूमते अरज़ी (ज़मीन की ख़िलाफ़त) की बुनियाद है। जो क़ौम इस इल्म के अंदर तरक़्क़ी करेगी वही इक़्तदारे अरज़ी (सत्ता) की हक़दार ठहरेगी। अलबत्ता इस रुकू के आख़िरी में फ़रमाया गया कि जब हज़रत आदम (अलै०) से ख़ता हो गई और शैतान के अग़वा (लालच) से मुतास्सिर होकर अल्लाह तआला के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी हो गई तो उन्होंने अल्लाह तआला के हुज़ूर तौबा की और अल्लाह तआला ने उनकी तौबा क़ुबूल करने का बायन तौर ऐलान कर दिया:

فَتَلَقّٰٓى اٰدَمُ مِنْ رَّبِّهٖ كَلِمٰتٍ فَتَابَ عَلَيْهِ (आयत:37)

इसके बाद ज़िक्र है कि जब आदम और हव्वा अलैहिस्सलाम को हुक्म दिया गया कि अब ज़मीन में जाकर रहो और वहाँ का चार्ज संभालो तो फ़रमाया:

فَاِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ مِّنِّىْ هُدًى فَمَنْ تَبِعَ هُدَاىَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ۝

"तो जब भी मेरी तरफ़ से तुम्हारे पास कोई हिदायत आये तो जो लोग मेरी उस हिदायत की पैरवी करेंगे उनके लिये किसी ख़ौफ और रंज का मौक़ा ना होगा।" (आयत:38)

वह इल्मे हिदायत है।

यह दो चीज़ें बिल्कुल अलैहदा-अलैहदा हैं। इल्मे अस्मा दरहक़ीक़त यूँ समझिये कि जैसे आम की गुठली में आम का पूरा दरख़्त होता है। वही गुठली तो है जो आप ज़मीन में दबाते हैं। फिर अगर वहाँ पानी पड़ता है और ज़मीन में रुईदगी की सलाहियत भी है तो वह गुठली फटेगी। उसमें से जो दो पत्ते निकलेंगे वह फलें-फूलेंगे, परवान चढ़ेंगे तो दरख़्त बनेगा। वह पूरा दरख़्त आम की गुठली में बिलक़ुवत (potentially) मौजूद था, अल्बत्ता उसे बिल् फ़अल (actually) पूरा दरख़्त बनने में तीन-चार साल लगेगें। तो जिस तरह पूरा दरख़्त आम की गुठली में बिल् क़ुव्वत मौजूद था लेकिन वह आम का दरख़्त कई साल के अंदर बिल् फ़अल वजूद में आया, बयीना यह मामला कुल माद्दी हक़ाइक़ का है कि इस ज़िमन में कुल इल्म हज़रत आदम (अलै०) के वजूद में

बिल् क़ुव्वत (potentially) वदीयत कर दिया गया! अब इसकी exfoliation हो रही है, वह बढ़ता जा रहा है, बर्गोबार ला रहा है। और जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, इस इल्म का कोई ताल्लुक़ आसमानी हिदायत से नहीं है। अब यह ख़ुद रू पौदा है जो बढ़ता चला जा रहा है, और मालूम नहीं कहाँ तक पहुँचेगा। अल्लामा इक़बाल ने इसकी सही ताबीर की है:

उरूज-ए-आदम-ए-ख़ाकी से अंजुम सहमे जाते हैं
कि यह टूटा हुआ तारा मय कामिल ना बन जाये!

अल्लामा की ज़िन्दगी में तो इंसान ने चाँद पर क़दम नहीं रखा था, लेकिन अब इंसान चाँद पर क़दम रख कर आ गया है। मज़ीद यह कि अब तो जेनेटिक इंजीनियरिंग अपने कमालात दिखा रही है। क्लोनिंग के तरीक़े से हैवानात पैदा किये जा रहे हैं। इस इंसानी इल्म के साथ अगर इल्मे वही यानि इल्मे हिदायत ना हो तो यह इल्म बजाये ख़ैर के शर का ज़रिया बन जाता है। चुनाँचे आज यह इल्म वाक़िअतन शैतानी क़ुव्वत बन चुका है, हलाकत का सामान बन चुका है, तबाही का ज़रिया बन चुका है।

{فَاِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ مِّنِّيْ هُدًى} ने हज़रत आदम अलै० से लेकर हज़रत मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ तक इरतक़ाई मराहिल तय किये। जैसे-जैसे नौए इंसानी शऊर की मंजिलें तय करती गई, अल्लाह तआला की तरफ़ से हिदायत में भी इज़ाफ़ा होता गया, ता आँके (यहाँ तक कि) यह इल्मे हिदायत क़ुरान हकीम में आकर "اَلْهُدٰى" (Final Guidance) की सूरत में मुकम्मल हो गया। इस हिदायत में जो इरतक़ा हुआ है उसे भी आप समझ लीजिये। पहली किताबें जो नाज़िल हुईं उनमें भी "هُدًى" तो थीं। सूरतुल मायदा में इर्शाद हुआ:

اِنَّآ اَنْزَلْنَا التَّوْرٰىةَ فِيْهَا هُدًى وَّنُوْرٌ

"हमने तौरात नाज़िल की थी, उसमें हिदायत भी थी नूर भी था।"(आयत:44)

इसी रुकू में (सूरतुल मायदा का सातवाँ रुकू) इंजील के बारे में फ़रमाया:

فِيْهِ هُدًى وَّنُوْرٌ

"उसमें हिदायत भी थी नूर भी था।" (आयत:46)

लेकिन यह हिदायत और नूर दर्जा-ब-दर्जा तरक़्क़ी करता रहा है, यहाँ तक कि क़ुरान में आकर यह कामिल हुआ है और اَلْهُدٰى बन गया है। अब यह هُدًى नहीं, اَلْهُدٰى है, यानि हिदायते ताम्मा (मुकम्मल)।

इसकी वजह क्या है? देखिये एक बच्चे को अगर आप तालीम देना चाहते हैं तो उसकी ज़हनी सतह को मल्हूज़ (ध्यान में) रखे बग़ैर नहीं दे सकते। आप प्राइमरी में ज़ेरे तालीम किसी बच्चे के लिये चाहे पी०एच०डी० उस्ताद रख दें, लेकिन वह उस्ताद बच्चे की ज़हनी इस्तअदाद (क्षमता) की मुनासिबत से ही उसे तालीम दे सकेगा। बच्चा रफ़्ता-रफ़्ता आगे बढ़ेगा। यहाँ तक कि जब वह अपनी अक़्ल और शऊर की पूरी शिद्दत, क़ुव्वत और बलूग़त को पहुँच जायेगा तब उसे आख़िरी इल्म पढ़ाया जायेगा। पहले वह तारीख़ पढ़ रहा था, अब फ़लसफ़ा-ए-तारीख़ पढ़ेगा। इस हवाले से अल्लाह तआला ने अपनी हिदायत तदरीज के साथ उतारी है। तौरात में सिर्फ़ अहकाम हैं, हिकमत है ही नहीं, जबकि इंजील में हिकमत है, अहकाम हैं ही नही। दोनों चीज़ें मिल कर एक बात को मुकम्मल करतीं हैं। तौरात में सिर्फ़ अहकाम हैं। जैसे आप बच्चे को बता देते हैं कि भई खाने-पीने से रोज़ा टूट जाता है, रोज़े का मतलब यह है कि अब दिन भर खाना-पीना कुछ नहीं है। चाहे बच्चा अभी छ: सात साल का है, वह यह बात समझ लेता है। इस तरह उसे अहकाम तो दे दिये जायेंगे कि यह करो, यह ना करो, यह Do's हैं यह Donts हैं।

चुनाँचे तौरात में अहकामे अशरा (The Ten Commandments) दे दिये गये, लेकिन अभी इनकी हिकमत नहीं बताई गई। इसलिये कि अभी हिकमत का तहम्मुल (समझना/धैर्य) इंसान के लिये मुमकिन नहीं था। अभी नौए इंसानी का अहदे तफ़ूलियत (बचपन) था। यूँ समझिये कि वह आज से साढ़े तीन हज़ार साल क़ब्ल का इंसान था। तौरात चौदह सौ क़ब्ल मसीह में हज़रत मूसा अलै० को दी गई। इसके चौदह सौ साल बाद हज़रत ईसा अलै० को इंजील दी गई, जिसमें सिर्फ़ हिकमत है, अहकाम हैं ही नहीं। लेकिन आज से दो हज़ार साल पहले हज़रत मसीह अलै० के यह अल्फ़ाज़ इंजील में मौजूद हैं (अब भी मौजूद हैं) कि आप अलैहिस्सलाम ने अपने हवारीन से फ़रमाया था: "मुझे तुमसे और भी बहुत सी बातें कहनी थीं, मगर अभी तुम उनका तहम्मुल नहीं कर सकोगे, जब वह फ़ारक़लीत आयेगा तो तुम्हें सब कुछ बतायेगा।" यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की पेशनगोई थी। हज़रत मसीह अलै० ने फ़रमाया कि अभी तुम तहम्मुल नहीं कर सकते। गोया तुम्हारी ज़हनी बलूग़त के लिये छ: सौ बरस मज़ीद दरकार हैं। चुनाँचे अल् हुदा क़ुरान हकीम में आकर मुकम्मल हुआ है।

क़ुरान मजीद जो हिदायत देता है उसके भी दो हिस्से हैं। एक फ़िक्रो नज़र की हिदायत है, जिसका उन्वान "ईमान" है। इसका मौज़ू वही है जो फ़लसफ़े का है। यानि कायनात की हक़ीकत क्या है, जिन्दगी की हक़ीक़त क्या है, ज़िन्दगी का माल क्या है, इसका आग़ाज़ क्या है, अन्जाम क्या है, सही क्या है, गलत क्या है, ख़ैर क्या है, शर क्या है, इल्म क्या है? क़ुरान मजीद का दूसरा मौज़ू हिदायते अमली है, इन्फ़रादी सतह पर भी और इज्तमाई सतह पर भी। यह अवामर व नवाही (करना ना करना) और हलाल व हराम के अहकाम पर मुश्तमिल है। फिर इसमें मआशी व मआशरती अहकाम भी हैं। यह हिदायते फ़िक्रो नज़र और हिदायते फअल व अमल (इन्फ़रादी व इज्तमाई) क़ुरान हकीम का मौज़ू है।

इस ज़िमन में यह बात नोट कर लीजिये कि साइंस और टेक्नोलॉजी क़ुरान हकीम का मौज़ू नहीं है, क़ुरान मजीद किताबे हिदायत है, साइंस की किताब नहीं है, अलबत्ता इसमें साइंसी उलूम (studies) की तरफ़ इशारे मौजूद हैं और उनके हवाले मौजूद हैं। क़ुरान मजीद कायनाती हक़ाइक़ को आयाते इलाहिया क़रार देता है। सूरतुल बक़रह की आयत 164 मुलाहिज़ा कीजिये, जिसे मैं "आयातुल आयात" क़रार देता हूँ:

اِنَّ فِیۡ خَلۡقِ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ وَاخۡتِلَافِ الَّیۡلِ وَالنَّهَارِ وَالۡفُلۡكِ الَّتِیۡ تَجۡرِیۡ فِی الۡبَحۡرِ بِمَا یَنۡفَعُ النَّاسَ وَمَاۤ اَنۡزَلَ اللّٰهُ مِنَ السَّمَآءِ مِنۡ مَّآءٍ فَاَحۡیَا بِهِ الۡاَرۡضَ بَعۡدَ مَوۡتِهَا وَبَثَّ فِیۡهَا مِنۡ كُلِّ دَآبَّةٍ ۖ وَّتَصۡرِیۡفِ الرِّیٰحِ وَالسَّحَابِ الۡمُسَخَّرِ بَیۡنَ السَّمَآءِ وَالۡاَرۡضِ لَاٰیٰتٍ لِّقَوۡمٍ یَّعۡقِلُوۡنَ ﴿۱۶۴﴾

"यक़ीनन आसमानों और ज़मीन की साख़्त हैं, रात और दिन के पेहम एक-दूसरे के बाद आने में, उन क़श्तियों में जो इंसान के नफ़े की चीज़ें लिये हुये दरियाओं और समुंदरों में चलती-फिरती हैं, बारिश के उस पानी में जिसे अल्लाह ऊपर से बरसाता है, फिर उसके ज़रिये से मुर्दा ज़मीन को ज़िन्दगी बख़्शता है और (अपने इसी इन्तेज़ाम की बदौलत) ज़मीन में हर क़िस्म की जानदार मख़्लूक़ को फैलाता है, हवाओं की गर्दिश में, और उन बादलों में जो आसमान और ज़मीन के दरमियान ताबेअ फ़रमान बना कर रखे गये हैं, उन लोगों के लिये बेशुमार निशानियाँ हैं जो अक़्ल से काम लेते हैं।"

यह सब अल्लाह की निशानियाँ हैं। इनमें अल्लाह की क़ुदरत, अल्लाह की अज़मत, अल्लाह का इल्मे कामिल, अल्लाह की हिकमते बालगा (प्रभावी) सब कुछ शामिल है। तो यह जो मज़ाहिर तबीई (Physical Phenomena) हैं, क़ुरान हकीम इनका जा-बजा हवाला देता है। बाज़ कायनाती हक़ाइक़ वह हैं जिनका ताल्लुक़ फ़ल्कियात (Astronomy) से है। फ़रमाया: (यासीन:40)

وَكُلٌّ فِیۡ فَلَكٍ یَّسۡبَحُوۡنَ ﴿۴۰﴾

यानि यह *"तमाम अजरामे समाविया अपने-अपने मदार (orbit) में तैर रहे हैं।"*

मालूम हुआ हर शय हरकत में है। इंसान पर एक दौर ऐसा गुज़रा है जब वह समझता था कि ज़मीन साकिन है और सूरज इसके गिर्द हरकत कर रहा है। फिर एक दौर आया जिसमें कहा गया कि नहीं, सूरज साकिन है, ज़मीन हरकत करती है, ज़मीन सूरज के गिर्द चक्कर लगाती है, और आज हमें मालूम हुआ कि हर शय हरकत में है। सूरज का भी अपना एक मदार (orbit) है, उसमें वह अपने पूरे कुन्बे समेत हरकत कर रहा है। यह निज़ामे शम्सी उसका कुन्बा है, इस पूरे कुन्बे को लेकर वह भी एक मदार में हरकत कर रहा है। तो मालूम हुआ कि अल्फ़ाज़े क़ुरानी: {وَكُلٌّ فِیۡ فَلَكٍ یَّسۡبَحُوۡنَ ﴿۴۰﴾} में "كُلٌّ" का लफ़्ज़ जिस तरह मन्क़ह और मुबरहन होकर, जिस शान के साथ आज होवीदा (ज़ाहिर) हुआ है, आज से पहले इंसान को मालूम नहीं था। क़ुरान मजीद में कायनाती मज़ाहिर के बारे में जो बात कही गई है वह कभी गलत नहीं हो सकती। यह वह हक़ीक़त है जो इस दौर में आकर पूरी तरह वाज़ेह हुई है।

डाक्टर मोरिस बोकाई एक फ्राँसिसी सर्जन थे। उन्होंने क़ुरान और बाइबिल दोनो का तक़ाबली मुताला किया। वाज़ेह रहे कि बाइबिल से मुराद अहदनामा क़दीम (Old Testament) और अहदनामा जदीद (New Testament) दोनों हैं। तक़ाबिली मुताला के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचे कि पूरे क़ुरान में कोई एक लफ़्ज भी ऐसा नहीं है जिसे हमारे साइंसी इन्कशाफ़ात में से किसी ने ग़लत साबित किया हो, जबकि तौरात में बेशुमार चीज़ें ऐसी हैं कि साइंस उन्हें ग़लत साबित कर चुकी है। इस पर उन्होंने 250 सफों की किताब तहरीर की: "The Bible, The Quran and Science"। सवाल यह पैदा होता है कि तौरात भी तो अल्लाह की किताब है, फिर उसमें ऐसी चीजें क्यों आ गईं जो साइंसी हक़ाइक़ के खिलाफ़ हैं। इसका जवाब यह है कि असल तौरात तो छठी सदी क़ब्ल मसीह ही में गुम हो गई थी जब बख़्त

नसर के हाथों येरुशलम की तबाही हुई थी। इसके डेढ़ सौ वर्ष बाद कुछ लोगों ने तौरात को याददाश्तों से मुरत्तब किया। लिहाज़ा उस वक़्त इंसानी इल्म की जो सतह थी उसके ऐतबारात से तावीलात तौरात में शामिल हो गयीं, क्योंकि इंसान तो अपनी ज़हनी सतह के मुताबिक़ ही सोच सकता है। तौरात में तहरीफ़ होने की वजह से इसमें ऐसी चीजें दर्ज हैं जो साइंस की रू से ग़लत साबित हुईं। अलबत्ता क़ुरान में ऐसी कोई तावील नहीं हुई और इसकी हिफ़ाजत का अल्लाह तआला ने खुद ज़िम्मा लिया है। यह बात बड़ी अहम है इसको बड़े ख़ूबसूरत अंदाज़ में डाक्टर रफीउद्दीन मरहूम ने कहा है कि यह कायनात अल्लाह का फअल है। उसकी तख्लीक़ और उसकी तदबीर है, जबकि क़ुरान अल्लाह का क़ौल है, और अल्लाह तआला के क़ौल व अमल में तज़ाद (विरोध) मुमकिन नहीं है। किसी इन्सान के क़ौल व अमल में भी अगर कोई तज़ाद हो तो वह इंसानियत की सतह से नीचे उतर जाता है, अल्लाह तआला के क़ौल और अमल में तज़ाद कैसे हो सकता है? यहाँ यह हो सकता है कि एक दौर में इंसानों ने बात समझी ना हो, उनका ज़हन वहाँ तक पहुँचा ना हो, उनकी मालूमात का दायरा अभी इस हद तक हो कि इन हक़ाइक़ तक ना पहुँचा जा सके। लेकिन जैस-जैसे वक़्त आयेगा मज़ीद हक़ाइक मुन्कशिफ़ होंगे और यह बात ज़्यादा से ज़्यादा वाज़ेह से वाज़ेहतर होती चली जायेगी कि जो कुछ क़ुरान ने फ़रमाया है वही बरहक़ है। यहाँ आज से पहले इंसानी ज़हन इस हद तक रसाई हासिल करने का अहल नहीं था। सूरह हा मीम सजदा की आख़िरी से पहली आयत ज़हन में रखिये:

سَنُرِيۡهِمۡ اٰيٰتِنَا فِى الۡاٰفَاقِ وَفِىۡۤ اَنۡفُسِهِمۡ حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَهُمۡ اَنَّهُ الۡحَقُّ ؕ

"हम उन्हें दिखाते चले जायेंगे अपनी निशानियाँ आफ़ाक़ में भी और ख़ुद उनकी जानों में भी, यहाँ तक कि यह बात पूरी तरह निख़र कर उनके सामने वाज़ेह हो जायेगी कि यह क़ुरान ही हक़ है।"

डॉक्टर कीथल मूर कनाडा के बहुत बड़े एम्ब्रॉयलॉजिस्ट हैं। उनकी किताब इल्मे जनीन (Embryology) में सनद मानी जाती है और यूनिवर्सिटी की सतह पर बतौर टेक्स्ट बुक पढ़ाई जाती है। उन्होंने क़ुरान हकीम का मुताला करने के बाद इन्तहाई हैरत का इज़हार किया है कि आज से चौदह सौ वर्ष क़ब्ल जबकि ना माइक्रोस्कोप मौजूद थी और ना ही dissection होता था, क़ुरान ने इल्मे जनीन के मुताल्लिक़ जो मालूमात दी हैं वह सही तरीन हक़ाइक़ पर मुश्तमिल हैं। डॉक्टर मौसूफ़ सूरतुल मोमिनून की आयात 12 से 14 का मुताला करते हुए अंगश्त बद नदाँ हैं:

وَلَقَدۡ خَلَقۡنَا الۡاِنۡسَانَ مِنۡ سُلٰلَةٍ مِّنۡ طِيۡنٍ ۚ﴿۱۲﴾ ثُمَّ جَعَلۡنٰهُ نُطۡفَةً فِىۡ قَرَارٍ مَّكِيۡنٍ ۖ﴿۱۳﴾ ثُمَّ خَلَقۡنَا النُّطۡفَةَ عَلَقَةً فَخَلَقۡنَا الۡعَلَقَةَ مُضۡغَةً فَخَلَقۡنَا الۡمُضۡغَةَ عِظٰمًا فَكَسَوۡنَا الۡعِظٰمَ لَحۡمًا ۗ ثُمَّ اَنۡشَاۡنٰهُ خَلۡقًا اٰخَرَ ؕ

"हमने इंसान को मिट्टी के सत् से बनाया, फिर उसे एक महफ़ूज़ जगह टपकी हुई बूँद में तब्दील किया, फिर उस बूँद को लोथड़े की शक़्ल दी, फिर लोथड़े को बोटी बना दिया, फिर बोटी की हड्डियाँ बनाईं, फिर हड्डियों पर गोश्त चढ़ाया, फिर उसे एक दूसरी ही मख़्लूक़ बना कर खड़ा किया।"

उनका कहना है कि वाक़्या यह है कि इंसानी तख़्लीक़ के मराहिल की इससे ज़्यादा सही ताबीर मुमकिन नहीं है। तो यह हक़ीक़त ज़हन में रखिये कि अग़रचे क़ुरान मजीद साइंस की किताब नहीं है, लेकिन जिन साइंसी हक़ाइक़ या साइंसी मज़ाहिर (phenomena) का क़ुरान ने हवाला दिया है वह यक़ीनन हक़ हैं, चाहे ता-हाल हम उनकी हक्क़ानियत को ना समझ पाये हों। मसलन आज भी मुझे नहीं मालूम कि क़ुरान जो "सात आसमान" कहता है तो इनसे क्या मुराद है। लेकिन मुझे यक़ीन है कि एक वक़्त आयेगा जब इंसान समझेगा कि "सात आसमान" के यह अल्फ़ाज़ ठीक-ठीक उस हक़ीक़त पर मुन्तबिक़ होते हैं जो आज हमारे इल्म में आयी है, पहले नहीं आयी थी। अलबत्ता जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूँ, अमली ऐतबार से यह नुक़्ता बहुत अहम है कि क़ुरान साइंस या टेक्नोलॉजी की किताब नहीं है और इसके हवाले से एक बड़ा मन्तक़ी नतीजा यह निकलता है कि अगर हमारे अस्लाफ़ ने अपने दौर की मालूमात की सतह पर क़ुरान की इन आयात का कोई ख़ास मफ़हूम मुअय्यन किया तो हमारे लिये लाज़िम नहीं है कि हम उसकी पैरवी करें। हम क़ुरान में बयानकरदा साइंसी मज़ाहिर को उस साइंसी तरक़्क़ी के हवाले से समझेंगे जो रोज़ ब रोज़ हो रही है। यहाँ तक कि आखिरी बात अर्ज़ कर रहा हूँ कि इस मामले में ख़ुद मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ से भी अगर कोई बात मन्क़ूल हो तो वह भी क़तई नहीं समझी जायेगी, क्योंकि हुज़ूर ﷺ यह चीज़ें सिखाने के लिये नहीं आये थे। यह बात अग़रचे बहुत से लोगों पर सक़ील और ग़िराँ गुज़रेगी लेकिन सही तर्ज़े अमल यही होगा कि साइंस और टेक्नोलॉजी के ज़िमन में अगर हुज़ूर ﷺ की कोई हदीस भी सामने आ जाये तो उसको भी हम दलीले क़तई नहीं समझेंगे।

इस सिलसिले में ताबीरे नख़ल का वाक़्या बहुत अहम है। आपको मालूम है कि हुज़ूर ﷺ की पैदाइश मक्के की है, हिजरत तक सारी ज़िन्दगी आपने वहाँ गुज़ारी, वह वादी-ए-ग़ैर ज़िज़रा है, जहाँ कोई पैदावार, कोई ज़राअत, कोई काश्त होती ही नहीं थी, लिहाज़ा आप ﷺ को उसका कोई तजुर्बा सिरे से था ही नहीं। हाँ तिजारत का भरपूर तजुर्बा था और उसके तमाम असरारो रमूज़ से आप ﷺ वाक़िफ़ थे। आप ﷺ मदीना तशरीफ़ लाये तो आप ﷺ ने देखा कि खजूरों के सिलसिले में अंसारे मदीना "ताबीरे नख़ल" का मामला करते थे। खजूर एक ऐसा पौधा है जिसके नर और मादा फूल अलैहदा-अलैहदा होते हैं। अगर इसके नर और मादा फूलों को क़रीब ले आयें तो इसके बारआवर (उपजाऊ) होने का इम्कान ज़्यादा हो जाता है। अहले मदीना को यह बात तजुर्बे से मालूम हुई थी और वह इस पर अमल पैरा (पालन करते) थे। मदीना तशरीफ़ आवरी पर रसूल अल्लाह ﷺ ने जब अहले मदीना का यह मामूल देखा तो उनसे फ़रमाया कि अगर आप लोग ऐसा ना करें तो क्या है? ऐसा ना करना शायद तुम्हारे हक़ में बेहतर हो। यह बात आप ﷺ ने अपने इज्तहाद और फ़हम के मुताबिक़ इस बुनियाद पर फ़रमायी कि फ़ितरत अपनी देखभाल ख़ुद करती है। अल्लाह तआला ने फ़ितरत का निज़ाम इंसानों पर नहीं छोड़ा, बल्कि यह तो ख़ुदकार निज़ाम है। चुनाँचे आप ﷺ ने फ़रमाया कि आप लोग इस क़ुदरती निज़ाम में दख़ल ना दें तो क्या है? अलबत्ता आप ﷺ ने रोका नहीं। लेकिन ज़ाहिर बात है कि सहाबा कराम रिज़वान अल्लाहु तआला अलैहिम अज्मईन के लिये हुज़ूर ﷺ का इतना कहना भी गोया हुक्म के दर्जे में था। उन्होंने उस साल वह काम नहीं किया, लेकिन फ़सल कम हो गई। अब वह ड़रते-डरते, झिझकते-झिझकते हुज़ूर ﷺ की ख़िदमत में आये और अर्ज़ किया कि हुज़ूर! हमने इस मर्तबा ताबीरे नख़ल नहीं की है तो फ़सल कम हुई है। इस पर आप ﷺ ने फ़रमाया: ((اَنْتُمْ اَعْلَمُ بِاَمْرِ دُنْيَاكُمْ))(1) इस हदीस का एक-एक लफ़्ज़ याद कर लीजिये। आप ﷺ ने फ़रमाया कि यह जो तुम्हारे अपने दुनयवी और माद्दी मामलें हैं जिनकी बुनियाद तजुर्बे पर है, यह तुम मुझसे बेहतर जानते हो। तुम ज़्यादा तजुर्बेकार हो, तुम इन हक़ीक़तों से ज़्यादा वाक़िफ हो। एक दूसरी रिवायत में रसूल ﷺ के यह अल्फ़ाज़ नक़ल हुए हैं:

اِنَّمَا اَنَا بَشَرٌ، اِذَا اَمَرْتُكُمْ بِشَیْءٍ مِّنْ دِيْنِكُمْ فَخُذُوْا بِہٖ، وَاِذَا اَمَرْتُكُمْ بِشَیْءٍ مِنْ رَأْيِیْ فَاِنَّمَا بَشَرٌ (2)

"मैं तो एक बशर हूँ। जब मैं तुम्हें तुम्हारे दीन के बारे में कोई हुक्म दूँ तो उससे सरताबी ना करना, लेकिन जब मैं तुम्हें अपनी राय से कोई हुक्म दूँ तो जान लो कि मैं एक बशर ही हूँ।"

गोया आप ﷺ ने वाज़ेह फ़रमा दिया कि मैं यह चीज़ें सिखाने नहीं आया, मैं जो कुछ सिखाने आया हूँ वह मुझसे लो! इस ऐतबार से यह हदीस बुनियादी अहमियत रखती है। ज़ाहिर है आप ﷺ टेक्नोलॉजी सिखाने नहीं आये थे। आप ﷺ तिब्ब व जराहत सिखाने नहीं आये थे, आप ﷺ कोई और साइंस पढ़ाने नहीं आये थे। वरना तो हम शिकवा करते कि आप ﷺ ने हमें एटम बम बनाना क्यों नहीं सिखा दिया? जब रसूल अल्लाह ﷺ ने यह फ़रमा दिया कि ((اَنْتُمْ اَعْلَمُ بِاَمْرِ دُنْيَاكُمْ)) तो हमारे लिये यह बात आख़िरी दर्जे में सनद है कि जैसे-जैसे साइंसी इन्कशाफ़ात (खुलासे) हो रहे हैं, जैसे-जैसे इल्मे इंसानी की exploration हो रही है, वैसे-वैसे हक़ीक़ते फ़ितरत हमारी निगाहों के सामने मुन्कशिफ़ हो रहे हैं। जैसे आम की गुठली से आम का पूरा दरख़्त वजूद में आता है ऐसे ही हज़रत आदम अलै० के वजूद में इल्म बिल् हवास और इल्म बिल अक़्ल का जो mechanism रख दिया गया था, यह उसी का नतीजा है कि इल्म फैल रहा है। इससे जो भी चीज़ें हमारे सामने आईं उनमें कहीं रुकावट नहीं है कि हम सलफ़ की बात को लेकर बैठ जाएँ कि साइंस ख़्वाह कुछ भी कहे हम तो असलाफ़ की बात मानेगें। यहाँ पर इस तर्ज़े अमल के लिये कोई दलील और बुनियाद नहीं।

क़ुरान का असल मौज़ू ईमान है। मा वराउल तबीयाती हक़ाइक़ (Beyond Physical Facts) आलमे ग़ैब से मुताल्लिक़ हैं, जो हमारे आलमे महसुसात (feelings) से मा वरा (beyond) हैं, जिसकी ख़बरें हमें सिर्फ़ वही से मिल सकती हैं। इल्मे हक़ीक़त जिसे हम इज्माली तौर पर ईमान कहते हैं यह क़ुरान का असल मौज़ू है, यानि हिदायते फ़िक्री व अमली। तमद्दुनी मैदान में, मआशी व इक़्तसादी और मआशरती मैदान में यह करो और यह ना करो। यह चीज़ें खाने-पीने की हैं, यह चीज़ें खाने-पीने की नहीं हैं। यह हराम हैं, यह नजिस हैं। यह इल्म हुज़ूर ﷺ ने दिया है और क़ुरान का मौज़ू असल में यही है। अलबत्ता क़ुरान में जो साइंसी रेफरेन्सेस आये हैं, वह ग़लत नहीं हैं, वह लाज़िमन दुरुस्त हैं।

इंसानी इल्म के तीन दायरे हैं। एक इल्म बिल् हवास है, यह इंसानी इल्म का पहला दायरा है। हवास के ज़रिये हमें मालूमात हासिल होती हैं, जिन्हें

आज-कल हम sense data कहते हैं। आँख ने देखा, कान ने सुना, हाथ ने उसकी पैमाइश की। इसके बाद दूसरा दायरा इल्म बिल अक़्ल है। अक़्ल sense data को प्रोसेस करती है। इस ज़िमन में इस्तदलाल और इस्तनबात के उसूल मुअय्यन किये गये हैं। इंसान अपने हवासे ख़म्सा (five senses) के ज़रिये इल्म हासिल करता है, फिर अक़्ल इन मालूमात को process करती है तो इंसान किसी नतीजे पर पहुँचता है। यूँ अक़्ल हवास की मोहताज हुई, लेकिन अक़्ल व हवास के मा वरा (के ऊपर) भी एक इल्म है जिसे शाह इस्माईल शहीद रहि० ने इल्म बिल् क़ल्ब का नाम दिया है। आज इसे extra sensory perceptions कहा जा रहा है। यह इल्म का तीसरा दायरा है। इससे पहले अदब में इसके लिये वज्दान (intuition) का लफ़्ज़ था। यह इल्म बिल् क़ल्ब दरहक़ीक़त वह ख़ास इंसानी इल्म है जिससे आज के माद्दा परस्त वाक़िफ़ नहीं हैं। वही का ताल्लुक़ इसी तीसरे दायरे से है। इसलिये कि वही का नुज़ूल क़ल्ब पर होता है। अज़रुए अल्फ़ाज़ क़ुरानी: (अल् शौरा:193-194)

نَزَلَ بِهِ الرُّوْحُ الْاَمِيْنُ ۝ عَلٰى قَلْبِكَ لِتَكُوْنَ مِنَ الْمُنْذِرِيْنَ ۝

अक़्ल और हवास से हासिल होने वाले उलूम (अध्ययन) में तमाम फ़िज़िकल साइंस, मेडिकल साइंस और टेक्नोलॉजी के मज़ामीन (articles) शामिल हैं। इंसान के मुख़्तलिफ़ चीज़ो के ख़वास (गुण) मालूम किये, कुछ तबीई (भौतिक) और किमियाई (रासायनिक) तब्दीलियों के उसूल दरयाफ़्त (खोज) किये। फिर उन उसूलों से जो मालूमात हासिल हुईं उनको इस्तेमाल किया। इससे इंसान की टेक्नोलॉजी तरक़्क़ी करती जा रही है और अभी ना मालूम कहाँ तक पहुँचेगी। यह एक इल्म है जिसका ज़िक्र क़ुरान हकीम में {وَعَلَّمَ اٰدَمَ الْاَسْمَاۗءَ كُلَّهَا} के अल्फ़ाज़ में कर दिया गया। अलबत्ता इंसान सिर्फ़ इस इल्म पर क़ानेअ (काफी/पर्याप्त) नहीं रहा, इसलिये कि इससे तो सिर्फ़ जुज़वी (partly) इल्म हसिल होता है, इंसान एक-एक जज़्व (ingredients) क़दम-ब-क़दम सीखता है। इंसान की एक तलब (urge) है कि वह माहियत (nature) मालूम करना चाहता है कि कायनात की हक़ीक़त क्या है? मेरी हक़ीक़त क्या है? इल्म की हक़ीक़त, ख़ैर (अच्छे) व शर (बुरे) की हक़ीक़त क्या है? ज़ाहिर बात है कि आज से एक हज़ार साल पहले के इंसान की मालूमात (इल्म बिल् हवास और इल्म बिल् अक़्ल के ऐतबार से) बड़ी महदूद थीं, लेकिन उस वक़्त के इंसान को भी इस चीज़ की ज़रुरत थी कि वह कोई राय क़ायम करे कि यह कायनात जिसका मैं एक फ़र्द हूँ, उसकी हक़ीक़त क्या है, ख़ुद मेरी हक़ीक़त क्या है? मेरी ज़िन्दगी का आग़ाज़ क्या है? मेरा इसके साथ रब्त (link) व ताल्लुक़ क्या है? इस सफ़र की मंज़िल क्या है? मैं अपनी ज़िन्दगी में क्या करूँ, क्या ना करूँ? क्या करना सही है क्या करना ग़लत है? यह इंसान की ज़रुरत है। लिहाज़ा इस ज़रुरत के तहत जब इंसान ने सोचना शुरू किया तो फ़लसफ़े का आग़ाज़ हुआ जो गुत्थियों को सुलझाना चाहता है। इन गुत्थियों को सुलझाने के लिये फिर इंसान ने अक़्ल के घोड़े दौड़ाये, अपनी मन्तिक़ (तर्क) को इस्तेमाल किया। फ़लसफ़ा, मा बाद अल् तबीअ'यात, इलाहियात, अख्लाक़ियात और नफ़्सियात, यह तमाम उलूम (studies) इंसानी उलूम (studies) में से हैं। गोया कि इल्म बिल् हवास और इल्म बिल् अक़्ल के नतीजे में यह दो इल्म वजूद में आये। एक फ़िज़िकल साइंस का इल्म जिसका ताल्लुक़ टेक्नोलॉजी से है। दूसरा सोशल साइंस का इल्म जिसमें फिलोसफी, सोशियोलॉजी, नफ़्सियात, अख्लाक़ियात, इक़्तसादयात (economics) और सियासियात वगैरह शामिल हैं।

जान लीजिये कि هُدًى जिसकी तकमीली शक्ल "اَلْهُدٰى" क़ुरान मजीद है, उसका मौज़ू इंसानी इल्म का दायरा-ए-अव्वल नहीं है। यह साइंस की किताब नहीं है और ना ही साइंस पढ़ाने या टेक्नोलॉजी सिखाने आई है। अम्बिया इसलिये नहीं भेजे गये। अग़रचे क़ुरान मजीद में साइंसी मज़ाहिर (घटनाओं) की तरफ़ हवाले मौजूद हैं और वह लाज़िमन दुरुस्त हैं, लेकिन वह क़ुरान का असल मौज़ू नहीं है। जैसे-जैसे इंसान के साइंसी इल्म में तदरीजन तरक़्क़ी हो रही है इसी तरह इन रेफरेन्सेस को समझना भी इंसान के लिये मुमकिन हो रहा है। अलबत्ता क़ुरान का असल मौज़ू मा बाद अल् तबीअ'यात है। फिर फ़िक्र व अमल दोनों के लिये रहनुमाई दरकार है, जैसे कि किसी रास्ते पर चलने वाले "रोड साइंज़" की ज़रुरत होती है कि इधर ना जाना, इधर ख़तरा है, हलाकत है। इसी तरह इंसान को सफ़रे हयात में इन cautions की ज़रूरत है कि इधर ख़तरा है, यह तुम्हारे लिये मम्नूअ (मना) है, यह हराम है, यह नुकसानदेह है, इसमें हलाकत है, चाहे तुम्हें हलाकत नज़र नहीं आ रही लेकिन तुम उधर जाओगे तो तुम्हारे लिये हलाकत है। दरहक़ीक़त यह क़ुरान का असल मौज़ू है।

❀ ❀ ❀

<u>बाब शशम (छठा)</u>

फ़हम-ए-क़ुरान के उसूल
(क़ुरान को समझने के सिद्धान्त)

फ़हम-ए-क़ुरआन के सिलसिले में दर्ज ज़ेल (निम्नलिखित) उन्वानात (शीर्षक) की तफ़हीम (समझ) ज़रूरी है।

1) <u>क़ुरान करीम का अस्लूबे इस्तदलाल (तर्क का अंदाज़)</u>

क़ुरान के तालिबे इल्म को जानना चाहिये कि क़ुरान का अस्लूबे इस्तदलाल मन्तक़ी (logical) नहीं, फ़ितरी (naturally) है। इंसान जिस फ़लसफ़े से वाक़िफ़ है उसकी बुनियाद मन्तिक़ है। चुनाँचे हमारे फ़लासफ़ा (दार्शनिक) और मुतकल्लिमीन (धर्मविज्ञानी) इस्तख़राजी मन्तिक़ (Deductive Logic) से ऐतना (उपेक्षा) करते रहे हैं, जबकि क़ुरआन मजीद ने इसे सिरे से इख़्तियार नहीं किया। वक़्ती तक़ाज़े के तहत हमारे मुतकल्लिमीन ने इसे इख़्तियार करने की कोशिश की लेकिन इससे कोई ज़्यादा फ़ायदा नहीं पहुँच पाया। ईमानी हक़ाइक़ को जब इस्तख़राजी मन्तिक़ के ज़रिये से साबित करने की कोशिश की गई तो यक़ीन कम और शक ज़्यादा पैदा हुआ। इस ज़िमन में केंट की बात हर्फ़े आख़िर का दर्जा रखती है, लिहाज़ा अल्लामा इक़बाल ने भी अपने ख़ुत्बात का आग़ाज़ इसी हवाले से किया है। केंट ने हत्मी (अंतिम) तौर पर साबित कर दिया कि किसी मन्तक़ी दलील से ख़ुदा का वजूद साबित नहीं किया जा सकता। मन्तिक़ में अल्लाह की हस्ती के अस्बात (यक़ीन) के लिये एक दलील लायेंगे तो मन्तिक़ की दूसरी दलील उसे काट देगी। जैसे लोहा लोहे को काटता है इसी तरह मन्तिक़, मन्तिक़ को काट देगी। क़ुरआन अग़रचे कहीं-कहीं मन्तिक़ को इस्तेमाल तो किया है लेकिन वह भी मन्तक़ी इस्तलाहात (वाक्यांश) में नहीं। क़ुरआन मजीद का अस्लूबे इस्तदलाल फ़ितरी है और इसका अंदाज़ ख़िताबी है। जैसे एक ख़तीब जब ख़ुत्बा देता है तो जहाँ वह अक़्ली दलीलें देता है वहाँ जज़्बात से भी अपील करता है। इससे उसके ख़ुत्बे में गहराई व गैराई (प्रभाव) पैदा होती है। एक लेक्चर में ज़्यादातर दारोमदार मन्तिक़ पर होता है। यानि ऐसी दलील जो अक़्ल को क़ायल कर सके। लेकिन शौला बयान ख़तीब इंसान के जज़्बात को अपील करता है। इसको ख़िताबी दलील कहा जाता है। यही ख़िताबी अंदाज़ और इस्तदलाल क़ुरआन ने इस्तेमाल किया है।

इंसान की फ़ितरत में कुछ हक़ीक़तें मौजूद हैं। क़ुरान के पेशे नज़र इन हक़ीक़तों को उभारना मक़सूद है। यानि इंसान को अमादा किया जाए कि:

“अपने मन में डूब कर पा जा सुराग़े ज़िन्दगी!”

अक़्ल और मन्तिक़ का दायरा तो बड़ा महदूद है। इंसान अपने अंदर झाँके तो उसके अंदर सिर्फ़ अक़्ल ही नहीं है, कुछ और भी है। बक़ौल अल्लामा इक़बाल:

है ज़ौक़े तजल्ली भी इसी ख़ाक में पिन्हाँ
ग़ाफ़िल! तो नरा साहब अदराक नहीं है!

यह जो इसके अंदर “कोई और” शय भी है, उसे अपील करना ज़रूरी है ताकि इंसान फ़ितरत की बुनियाद पर अपने अंदर झाँके और महसूस करे कि हाँ यह है! ताहम उसके लिये कोई मन्तक़ी दलील भी पेश कर दी जाये। तो यह नूरुन अला नूर (सोने पे सुहागा) होगा। यह है दरहक़ीक़त क़ुरआन का फ़ितरी तर्ज़े इस्तदलाल। बाज़ मक़ामात पर ऐसे मालूम होता है कि जैसे क़ुरआन अपने मुख़ातिब की आँखों में आँखें डाल कर कुछ कह रहा है और उसे तवज्जोह दिला रहा है कि ज़रा ग़ौर करो, सोचो, अपने अंदर झाँको। जैसे सूरह इब्राहिम की आयत 10 में फ़रमाया गया:

أَفِي اللَّهِ شَكٌّ فَاطِرِ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ

“क्या अल्लाह की हस्ती में कोई शक है जो आसमानों और ज़मीन को पैदा करने वाला है?”

यहाँ कोई मन्तक़ी दलील नहीं है, लेकिन मुख़ातिब को दरूँ बीनी पर आमादा किया जा रहा है कि अपने अन्दर झाँको, तुम्हें अपने अंदर सुबूत मिलेगा, तुम्हें अपने अन्दर अल्लाह की हस्ती की शहादत मिलेगी। सूरतुल अनाम की आयत 19 में इर्शाद हुआ:

أَئِنَّكُمْ لَتَشْهَدُونَ أَنَّ مَعَ اللَّهِ آلِهَةً أُخْرَىٰ

“क्या तुम वाक़ई इस बात की गवाही दे रहे हो कि अल्लाह के सिवा कोई और इलाह भी है?”

यानि तुम यह बात कह तो रहे हो, लेकिन ज़रा सोचो तो सही क्या कह रहे हो? क्या तुम्हारी फ़ितरत इसे तस्लीम करती है? अपने बातिन में झाँको, क्या तुम्हारा दिल इसकी गवाही देता है? हालाँकि ज़ाहिर है कि वह तो इसके मुद्दई थे और अपने माअबुदाने बातिल के लिये कट मरने को तैयार थे। इस ख़िताबी दलील के पसमंज़र में यह हक़ीक़त मौजूद है कि तुम जानते हो कि यह महज़ एक अक़ीदा (dogma) है जो चला आ रहा है, तुम्हारे बाप-दादा की रिवायत है, इसकी हैसियत तुम्हारे नस्ली ऐतक़ादात (racial creed) की है। क़ुरआन मजीद दरहक़ीक़त इंसान की फ़ितरत के अंदर जो शय मुज़मर (फँसी) है उसी को उभार कर बाहर लाना चाहता है। चुनाँचे क़ुरआन का अस्लूबे इस्तदलाल मन्तक़ी नहीं है, बल्कि फ़ितरी है। इसको ख़िताबी अंदाज़ कहा जायेगा।

2) क़ुरान हकीम में मुहक्कम और मुताशाबेह की तक़सीम

सूरह आले इमरान की आयत 7 मुलाहिज़ा कीजिये! इर्शाद हुआ है:

هُوَ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ مِنْهُ اٰيٰتٌ مُّحْكَمٰتٌ هُنَّ اُمُّ الْكِتٰبِ وَاُخَرُ مُتَشٰبِهٰتٌ

"वही है (अल्लाह) जिसने (ऐ मुहम्मद ﷺ) आप पर किताब नाज़िल की, उसमें से कुछ आयाते मुहक्क्मात हैं, वही किताब की जड़ बुनियाद हैं और दूसरी मुतशाबेह हैं।"

इस आयत में लफ़्ज़ किताब दो दफ़ा आया है, दोनों के मफ़हूम में बारीक सा फ़र्क है। मुताशाबेह इन मायने में कि असल मफ़हूम को समझने में इश्तबाह (गलती) हो जाता है, वह आयाते मुताशाबिहात हैं। आगे फ़रमाया:

فَاَمَّا الَّذِيْنَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ زَيْغٌ فَيَتَّبِعُوْنَ مَا تَشَابَهَ مِنْهُ ابْتِغَاۗءَ الْفِتْنَةِ وَابْتِغَاۗءَ تَاْوِيْلِهٖ

"तो वह लोग जिनके दिलों में कजी है वह मुतशाबेह आयात के पीछे पड़ जाते हैं (उन्हीं पर गौरो फ़िक्र और उन्हीं में खोज कुरेद में लगे रहते हैं) उनकी नीयत ही फ़ितना उठाने की है, और वह भी हैं जो उसका असल मफ़हूम जानना चाहते हैं।"

وَمَا يَعْلَمُ تَاْوِيْلَهٗٓ اِلَّا اللّٰهُ

"हालाँकि उसके हक़ीक़ी मायने व मुराद अल्लाह ही जानता है।"

وَالرّٰسِخُوْنَ فِي الْعِلْمِ يَقُوْلُوْنَ اٰمَنَّا بِهٖ ۙ كُلٌّ مِّنْ عِنْدِ رَبِّنَا ۚ

"अलबत्ता जो लोग इल्म में पुख़्तगी के हामिल हैं वह कहते हैं कि हम ईमान रखते हैं इस पूरी किताब पर (मुहक्क्मात पर भी और मुतशाबेहात पर भी), यह सब हमारे रब की तरफ़ से है।"

وَمَا يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِ

"लेकिन नसीहत नहीं हासिल करते मगर वही जो होशमन्द हैं।"

अल्लाह तआला हमें उन अक़्लमंदों और होशमंदों में शामिल करे, رَاسِخُوْنَ فِى الْعِلْمِ में हमारा शुमार हो!

मुहक्कम और मुतशाबेह से मुराद क्या है? जान लीजिये कि "मुहक्कम क़तई" यानि वह मुहक्कम जिनके क़तई होने में ना पहले कोई शुबह हो सकता था ना अब है, ना आइंदा होगा, वह तो क़ुरआन हकीम के अवामिर व नवाही (Do's and Donts) हैं। यानि यह करो, यह ना करो, यह हलाल है, यह हराम है, यह जायज़ है, यह नाजायज़ है, यह पसंदीदा है, यह नापसंदीदा है, यह अल्लाह को पसंद और यह अल्लाह को नापसंद है!

क़ुरान हकीम का अमली हिस्सा दरहक़ीक़त मुहक्कमात ही पर मुश्तमिल है। यही वजह है कि इस आयत में किताब का लफ़्ज़ दो मर्तबा आया है। पहले बहैसियत मज्मुई पूरे क़ुरान के लिये फ़रमाया: {هُوَ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ} क़ुरआन मजीद का जो हिस्सा अमली हिदायतों पर मुश्तमिल है उसके लिये भी लफ़्ज़ "किताब" मख़्सूस है। चुनाँचे दूसरी मर्तबा जो लफ़्ज़ किताब आया है: {هُنَّ اُمُّ الْكِتٰبِ} वह इसी मफ़हूम में है। जहाँ कोई शय वाजिब की जाती है वहाँ "كُتِبَ" का लफ़्ज़ आता है। जैसे {كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ} {كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ} {كُتِبَ عَلَيْكُمْ اِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ} नमाज़ के बारे में फ़रमाया: {اِنَّ الصَّلٰوةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ كِتٰبًا مَّوْقُوْتًا} (सूरह निसा:103) यहाँ किताब से मुराद वह हुक्म है जो दिया गया है, तो इन मायने में {هُنَّ اُمُّ الْكِتٰبِ} से मुराद क़ानून, शरीअत, अमली हिदायात, अवामिर व नवाही हैं और असल में वही मुहक्कमात हैं।

दायमी मुतशाबिहात आलमे ग़ैब और उसके ज़िमन में आलम-ए- बरज़ख, आलम-ए-आख़िरत, आलम-ए-अरवाह, मलाइका का आलम और आलम-ए-

इमसाल वग़ैरह हैं। यह दरहक़ीक़त वह दायरे हैं जो हमारी निगाहों से ओझल हैं और इसकी हक़ीक़तों को कव्व कमाहक़, इस ज़िन्दगी में समझना महाल और नामुमकिन है। लेकिन इनका एक इल्म दिया जाना ज़रूरी था। मा बाद अल् तबीअ'यात ईमानियात के लिये ज़रूरी है कि इस सबका एक इज्माली ख़ाका सामने हो। हर इंसान ने मरना है, मरने के फ़ौरन बाद आलम-ए-बरज़ख में यह कुछ होना है, बा'अस बाद अल् मौत (मौत के बाद उठना) है, हश्र-नश्र है, हिसाब-किताब है, जन्नत व दोज़ख़ है। इन हक़ीक़तों का इज्माली इल्म मौजूद ना हो तो बुनियादी ज़रुरत के तौर पर इंसान को जो फ़लसफ़ा दरकार है वह उसको फ़राहम नहीं होगा। लेकिन इनकी हक़ीक़तों तक रसाई इस ज़िन्दगी में रहते हुए हमारे लिये मुमकिन नहीं, लिहाज़ा इनका जो इल्म दिया गया है वह आयाते मुतशाबिहात हैं, और वह दाईमन मुतशाबिहात ही रहेंगी। हाँ जब उस आलम में आँख खुलेगी तो असल हक़ीक़त मालूम होगी, यहाँ मालूम नहीं हो सकती।

अलबत्ता मुतशाबिहात का एक दूसरा दायरा है जो तदरीजन मुतशाबिहात से मुहक्कमात की तरफ़ आ रहा है। वह दायरा मज़ाहिर तबीई (Physical Phenomena) से मुताल्लिक़ है। आज से हज़ार साल पहले इसका दायरा बहुत वसीअ (wide) था, आज यह कुछ महदूद हुआ है, लेकिन अब भी बहुत से हकों को हम नहीं जानते। सात आसमानों की हक़ीक़त आज तक हमें मालूम नहीं है। हो सकता है कुछ आगे चल कर हमारा मैटेरियल साइंस का इल्म इस हद तक पहुँच जाये कि मालूम हो कि यह है वह बात जो क़ुरआन ने सात आसमानों से मुताल्लिक़ कही थी, लेकिन इस वक़्त यह हमारे लिये मुतशाबिहात में से है। इसी तरह एक आयत (सूरह यासीन:40)

"हर शय अपने मदार में तैर रही है।" كُلٌّ فِي فَلَكٍ يَّسْبَحُوْنَ۝

इसको पहले इंसान नहीं समझ सकता था, लेकिन आज यह हक़ीक़त मुहक्कम होकर सामने आ गई है कि:

"लहु ख़ुर्शीद का टपके अगर ज़र्रे का दिल चीरें!"

अगर आप निज़ामे शम्सी को देखें तो हर चीज़ हरकत में है। कहकशां को देखें तो हर शय हरकत में है। कहकशांऐं एक-दूसरे से दूर भाग रही हैं, फ़ासला बढ़ता चला जा रहा है। एक ज़र्रे (atom) का मुशाहिदा करें तो उसमें इलेक्ट्रोन और प्रोटोन हरकत में हैं। गोया हर शय हरकत में है आज से कुछ अरसा क़ब्ल यह बात मुतशाबिहात में थी, आज वह मुहक्कमात के दायरे में आ गई है। चुनाँचे बहुत सी वह साइंसी हक़ीक़तें जो अभी तक इंसान को मालूम नहीं हैं और उनके हवाले क़ुरआन में हैं, वह आज के ऐतबार से तो मुतशाबिहात में शुमार होंगे लेकिन इंसान का फ़िज़िकल साइंस का इल्म आगे बढ़ेगा तो वो तदरीजन मुतशाबिहात के दायरे से निकल कर मुहक्कमात के दायरे मे आ जायेंगे।

3) तफ़्सीर और तावील का फ़र्क़

तफ़्सीर और तावील दोनो लफ़्ज़ क़ुरआन मजीद में आये हैं। सूरह आले इमरान की मुतज़क्किर बाला आयत में इर्शाद हुआ है:

"इसकी तावील कोई नहीं जानता मगर अल्लाह।" وَمَا يَعْلَمُ تَأْوِيْلَهٗٓ اِلَّا اللّٰهُ

तफ़्सीर का लफ़्ज क़ुरआन मजीद में सूरतुल फ़ुरक़ान में आया है:

"और नहीं लाते वह आपके सामने कोई निराली बात मगर हम पहुँचा देते हैं (उसके जवाब में) आपको ठीक बात और बेहतरीन तरीक़े से बात खोल देते हैं।" وَلَا يَاْتُوْنَكَ بِمَثَلٍ اِلَّا جِئْنٰكَ بِالْحَقِّ وَاَحْسَنَ تَفْسِيْرًا۝

यह लफ़्ज़ क़ुरआन में एक ही मर्तबा आया है, जबकि तावील का लफ़्ज़ सत्रह (17) बार आया है। इसके कुछ और मफ़हूम भी हैं और क़ुरआन के अलावा कुछ और चीज़ों पर भी इसका इत्लाक़ (लागू) हुआ है। तफ़्सीर और तावील में फ़र्क क्या है? तफ़्सीर का मादह "ف س ر" है। यह गोया "सफ़र" की मुन्क़लिब शक़्ल है। सफ़र ब-मायने Journey भी है--- और इसका मतलब रोशनी भी है, किताब भी है। हुरूफ़ ज़रा आगे-पीछे हो गये हैं, लफ़्ज़ एक ही है। तफ़सीर के मायने हैं किसी शय को खोलना, वाज़ेह कर देना, किसी शय को रोशन कर देना, लेकिन यह ज़्यादातर मुफरादात और अल्फ़ाज़ से मुताल्लिक़ होती है, जबकि तावील बहैसियत मज्मुई कलाम का असल मद्लूल होती है कि इससे मुराद क्या है, इसका असल मक़सूद क्या है, इसकी असल हक़ीक़त क्या है। लिहाज़ा ज़्यादातर यही लफ़्ज़ क़ुरआन के लिये मुस्तमिल है। अग़रचे हमारे यहाँ उर्दूदान लोग ज़्यादातर लफ़्ज़ तफ़्सीर

इस्तेमाल करते हैं कि फलाँ आयत की तफ़्सीर, फ़लाँ लफ़्ज़ की तफ़्सीर, लेकिन इसके लिये क़ुरआन की असल इस्तलाह तावील ही है और हदीस में भी यही लफ़्ज़ आया है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) के लिये हुज़ूर ﷺ की दुआ मन्क़ूल है: ((اَللّٰھُمَّ فَقِّھْهُ فِی الدِّیْنِ وَعَلِّمْهُ التَّاوِیْلَ)) यानि ऐ अल्लाह! इस नौजवान को दीन का फ़हम और तफ़क्क़ो अता फ़रमा और तावील का इल्म अता फ़रमा! चुनाँचे कलाम की असल हक़ीक़त, असल मुराद, असल मतलूब, असल मद्‌लूल को पा लेना ताकि इंसान असल मक़सूद तक पहुँच जाये, इसे तावील कहते हैं।

"जो शय की हक़ीक़त को ना देखे वह नज़र क्या!"

"ا,و,ل" का माद्दा अरबी ज़बान में किसी शय की तरफ़ लौटने के मफ़हूम में आता है। इसी लिये लोग कहते हैं हम फ़लाँ की आल हैं, यानि वह किसी बड़ी शख़्सियत की तरफ़ अपनी निस्बत करते हैं। "आले फ़िरऔन" का मतलब फ़िरऔन की औलाद नहीं है, बल्कि फ़िरऔन वाले "फ़िरऔनी" है। वह फ़िरऔन की ही इताअत करते थे और उसी को अपना माबूद यानि हाकिम और पेशवा समझते थे। इसी मायने में किसी इबारत को उसके असल मफ़हूम की तरफ़ लौटाना तावील है। तफ़्सीर और तावील के माबैन इस फ़र्क़ को ज़हन में रखना ज़रूरी है।

4) तावील-ए-आम और तावील-ए-ख़ास

क़ुरआन हकीम की किसी एक आयत या चंद आयात के मज्मुए या किसी ख़ास मज़मून जो चंद आयात में मुक़म्मल हो रहा है, पर ग़ौर करने में दो मरहले हमेशा पेशे नज़र रहने चाहियें: एक तावीले ख़ास और दूसरा तावीले आम। इस सिलसिले में याद रहे कि क़ुरआन हकीम ज़मान (समय) व मकान के एक ख़ास तनाज़र (Perspective) में नाज़िल हुआ है। इसका ज़माना-ए-नुज़ूल 610 ईस्वी से 632 ईस्वी के अरसे पर मुहीत (शामिल) है और इसके नुज़ूल की जगह सरज़मीं हिजाज़ है। इसका एक ख़ास पसमंज़र है। ज़ाहिर बात है कि अगर उस वक़्त और उस इलाक़े के लोगों के अक़ीदे व नज़रियात और उनकी ज़हनी सतह को मलहूज़ (ध्यान में) ना रखा जाता तो उन तक इब्लाग़ (communication) मुमकिन ही नहीं था। वह तो उम्मी थे (अशिक्षित), पढ़े-लिखे ना थे। अगर उन्हें फ़लसफ़ा पढ़ाना शुरू कर दिया जाता, साइंसी उलूम के बारे में बताया जाता तो यह बातें उनके सरों के ऊपर से गुज़र जातीं। क़ुरआनी आयात तो उनके दिल और दिमाग़ में पैवस्त (attached) हो गई, क्योंकि बराहेरास्त इब्लाग़ (communication) था, कोई barrier मौजूद नहीं था। तो क़ुरआन हकीम का यह शाने नुज़ूल ज़हन में रखिये। वैसे तो "शाने नुज़ूल" की इस्तलाह (term) किसी ख़ास आयत के लिये इस्तेमाल होती है, लेकिन एक ख़ास time and space complex में क़ुरआन हकीम का एक मज्मुई शाने नुज़ूल है जिसमें यह नाज़िल हुआ। वहाँ के हालात, उस अरसे के वाक़्यात, उन हालात में तदरीजन जो तब्दीली हुई, फिर कौन लोग इसके मुख़ातिब थे, अहले मक्का के अक़ीदे, उनकी रस्में-रीतें, उनके नज़रियात, उनके मुसल्लमात, उनकी दिलचस्पियाँ...... जब क़ुरआन को इस सयाक़ व सबाक़ (context) में रख कर ग़ौर करेंगे तो यह तावीले ख़ास होगी। इसमें आप मज़ीद तफ़्सील में जायेंगे कि फ़लाँ आयत का वाक़्याती पसमंज़र क्या है। यानि क़ुरआन मजीद की किसी आयत या चंद आयात पर ग़ौर करते हुए अव्वलन इसको इसके context में रख कर ग़ौर करना कि जब यह आयात नाज़िल हुईं उस वक़्त लोगों ने इनका मफ़हूम क्या समझा, यह तावीले ख़ास होगी। अलबत्ता क़ुरआन मजीद चूँकि नौए इंसानी की अब्दी (अनन्त) हिदायत के लिये नाज़िल हुआ है, सिर्फ़ ख़ास इलाक़े और ख़ास ज़माने के लोगों के लिये तो नाज़िल नहीं हुआ, लिहाज़ा इसमें अब्दी (अनन्त) हिदायत है, इस ऐतबार से तावीले आम करना होगी।

तावीले आम के ऐतबार से अल्फ़ाज़ पर ग़ौर करेंगे कि अल्फ़ाज़ क्या इस्तेमाल हुए हैं। यह अल्फ़ाज़ जब तरकीबों की शक्ल इख़्तियार करतें हैं तो क्या तरकीबें बनती हैं। फिर आयात का बाहमी रब्त क्या है, सयाक़ व सबाक़ क्या है? यह आयात जिस सूरह में आई उसका अमूद क्या है, उस सूरह का जोड़ा कौनसा है, यह सूरह किस सिलसिला-ए-सूर का हिस्सा है। फिर वह सूरतें मक्की और मदनी कौनसे ग्रुप में शामिल हैं, उनका मरकज़ी मज़मून क्या है? इस पसमंज़र में एक सयाक़ व सबाक़ मतन (text) का होगा, जिससे हमें तावीले आम मालूम होगी और एक सयाक़ व सबाक़ वाक़्यात का होगा, जिससे हमें उन आयतों की तावीले ख़ास मालूम होगी।

अगर हम क़ुरआन मजीद की मौजूदा तरतीब के ऐतबार से आयतों पर ग़ौर करें तो मालूम होगा कि जिस तरतीब से इस वक़्त क़ुरआन मजीद मौजूद है असल हुज्जत यही है, यही असल तरतीब है, यही लौहे महफ़ूज़ की तरतीब

है। तावीले आम के ऐतबार से एक उसूली बात याद रखें: الاعتبار لعموم اللفظ لا لخصوص السبب यानि असल ऐतबार अल्फ़ाज़ के अमूम का होगा ना कि ख़ास शाने नुज़ूल का। देखा जायेगा कि जो अल्फ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं उनका मफ़हूम व मायने, नेज़ मद्लूल क्या है। कलामे अरब से दलाइल लाये जायेंगे कि वह इन्हें किन मायने में इस्तेमाल करते थे। उस लफ़्ज़ के अमूम का ऐतबार होगा ना कि उसके शाने नुज़ूल का। लेकिन इसके यह मायने भी नहीं कि इसे बिल्कुल नज़र अंदाज़ कर दिया जाये। सबसे मुनासिब बात यही होगी कि पहले इसकी तावीले ख़ास पर ग़ौर करें और फिर इसके अब्दी सरचश्मा-ए-हिदायत होने के नाते अमूम पर ग़ौर करें। इस ऐतबार से तावीले ख़ास और तावीले आम के फ़र्क़ को ज़हन में रखें।

5) <u>तज़क्कुर व तदब्बुर</u>

तज़क्कुर व तदब्बुर दोनों अल्फ़ाज़ अलग-अलग तो बहुत जगह आये हैं, सूरह सुआद की आयत 29 में यकजा (एक साथ) आ गये हैं:

كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ اِلَيْكَ مُبٰرَكٌ لِّيَدَّبَّرُوْٓا اٰيٰتِهٖ وَلِيَتَذَكَّرَ اُولُوا الْاَلْبَابِ ﴿٢٩﴾

“यह एक बड़ी बरकत वाली किताब है जो (ऐ नबी ﷺ) हमने आपकी तरफ़ नाज़िल की है ताकि यह लोग इसकी आयात पर गौर करें और अक़्ल व फ़िक्र रखने वाले इससे सबक़ लें।”

इन दोनों का मतलब क्या है? एक है क़ुरआन मजीद से हिदायत अखज़ कर लेना, नसीहत हासिल कर लेना, असल रहनुमाई हासिल कर लेना, जिसको मौलाना रूम ने कहा: “माज़ क़ुराँ मग़ज़हा बरदा शतीम” यानि क़ुरआन का जो असल मग़ज़ है वह तो हमने ले लिया। इसका असल मग़ज़ “हिदायत” है। इस मरहले पर क़ुरआन जो लफ़्ज़ इस्तेमाल करता है वह “तज़क्कुर” है। यह लफ़्ज़ ज़िक्र से बना है। तज़क्कुर याददेहानी को कहते हैं। अब इसका ताल्लुक़ उसी बात से जुड़ जायेगा जो क़ुरआन के अस्लूबे इस्तदलाल के ज़िमन में पहले बयान की जा चुकी है। यानि क़ुरआन मजीद जिन असल हक़ाइक़ (माबाद अल्तबीअ'यात हक़ीक़तों) की तरफ़ रहनुमाई करता है वह फ़ितरते इंसानी में मुज़मर हैं, उन पर सिर्फ़ ज़हूल और निस्यान (भूलने) के पर्दे पड़ गये हैं। मसलन आपको कोई बात कुछ अरसे पहले मालूम थी, लेकिन अब उसकी तरफ़ ध्यान नहीं रहा और वह आपकी याददाश्त के ज़ख़ीरे में गहरी उतर गई है और अब याद नहीं आती, लेकिन किसी रोज़ उसकी तरफ़ कोई हल्का सा इशारा मिलते ही आपको वह पूरी बात याद आ जाती है। जैसे आपका कोई दोस्त था, किसी ज़माने मे बेतकल्लुफ़ी थी, सुबह शाम मुलाक़ातें थीं, अब तवील अरसा हो गया,कभी उसकी याद नहीं आयी। ऐसा नहीं कि आपको याद नहीं रहा, बल्कि ज़हूल है, निस्यान है, तवज्जह उधर नहीं है, कभी ज़हन उधर मुन्तक़िल ही नहीं होता। लेकिन अचानक किसी रोज़ आपने अपना ट्रंक खोला और उसमें से कोई क़लम या रुमाल जो उसने कभी दिया हो बरामद हो गया तो फ़ौरन आपको अपना वह दोस्त याद आ जायेगा। यह phenomenon तज़क्कुर है। तज़क्कुर का मतलब तअल्लम नहीं है। तअल्लम इल्म हासिल करना यानि नई बात जानना है, जबकि तज़क्कुर पहले से हासिलशुदा इल्म जिस पर ज़हूल और निस्यान के जो पर्दे पड़ गये थे, उनको हटाकर अंदर से उसे बरामद करना है। फ़ितरते इंसानी के अंदर अल्लाह की मोहब्बत, अल्लाह की मार्फ़त के हक़ाइक़ मुज़मर हैं। यह फ़ितरत में मौजूद हैं, सिर्फ़ उन पर पर्दे पड़ गये हैं, दुनिया की मोहब्बत ग़ालिब आ गई है:

दुनियाँ ने तेरी याद से बेगाना कर दिया
तुझसे भी दिलफ़रेब हैं ग़म रोज़गार के! (फ़ैज़)

यहाँ की दिलचस्पियों, मसाइल, मुश्किलात, मशरूफियात, मशागुल की वजह से ज़हूल हो गया है, पर्दा पड़ गया है। तज़क्कुर यह है कि इस पर्दे को हटा दिया जाये।

सरकशी ने कर दिये धुंधले नक़ूशे बन्दगी
आओ सज्दे में गिरें, लौहे जबीं ताज़ा करें! (हफ़ीज़)

याददाश्त को recall करना और अपनी फ़ितरत में मुज़मर हक़ाइक़ को उजाग़र कर लेना तज़क्कुर है। क़ुरआन का असल हदफ़ यही है और इस ऐतबार से क़ुरआन का दावा सूरह अल् क़मर में चार मर्तबा आया है:

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْاٰنَ لِلذِّكْرِ فَهَلْ مِنْ مُّدَّكِرٍ ﴿٣٢﴾

“हमने क़ुरान को तज़क्कुर के लिये बहुत आसान बना दिया है, तो कोई है नसीहत हासिल करने वाला?”

इसके लिये बहुत ग़हराई में गोताज़नी करने की ज़रुरत नहीं है, बहुत मशक्क़त व मेहनत मतलूब नहीं है। इंसान के अंदर तलब-ए-हक़ीक़त हो और

क़ुरआन से बराहेरास्त राब्ता (communication) हो जाये तो तज़क्कुर हासिल हो जायेगा। इसकी शर्त सिर्फ़ एक है और वह यह कि इंसान को इतनी अरबी ज़रूर आती हो कि वह क़ुरआन से हम कलाम हो जाये। अगर आप तर्जुमा देखेंगे तो कुछ मालूमात तो हासिल होगी, तज़क्कुर नहीं होगा। इक़बाल ने कहा था:

तेरे ज़मीर पर जब तक ना हो नुज़ूले किताब
ग़िरह कशा है ना राज़ी ना साहिबे कशाफ़!

तज़क्कुर के अमल का असर तो यह है कि आपके अंदर के मुज़मर हक़ाइक़ उभर कर आपके शऊर की सतह पर दोबारा आ जायें। यह ना हो कि पहले आपने मतन को पढ़ा, फिर तर्जुमा देखा, हाशिया देखा, इसके बाद अगली आयत की तरफ़ गये तो तसलसुल टूट गया और कलाम की तासीर ख़त्म हो गई। तर्जुमे से कलाम की असल तासीर बाक़ी नहीं रहती। शेक्सपियर की कोई इबारत अगर आप अँग्रेज़ी में पढ़ेंगे तो झूम जायेंगे, अगर उसका तर्जुमा करेंगे तो उसका वह असर नहीं होगा। इसी तरह ग़ालिब का शेर हो या मीर का, उसका अँग्रेज़ी में तर्जुमा करेंगे तो वह असर बाक़ी नहीं रहेगा और आप वजद में नहीं आयेंगे, झूम-झूम नहीं जायेंगे। अरबी ज़बान का इतना इल्म कि आप अरबी मतन को बराहेरास्त समझ सकें, तज़क्कुर की बुनियादी शर्त है। चुनाँचे अव्वलन (पहला) हुस्ने नीयत हो, तलबे हिदायत हो, तास्सुब की पट्टी ना बंधी हो, और सानयन (दूसरे) अरबी ज़बान का इतना इल्म हो कि आप बराहेरास्त उससे हम कलाम हो रहे हों, यह दोनों शर्तें पूरी हो जायें तो तज़क्कुर हो जायेगा।

दोबारा ज़हन में ताज़ा कर लीजिये कि आयत का मतलब निशानी है। निशानी उसे कहते हैं जिसको देख कर ज़हन किसी और शय की तरफ़ मुन्तक़िल हो जाये। आपने क़लम या रुमाल देखा तो ज़हन दोस्त की तरफ़ मुन्तक़िल हो गया जिससे मिले हुए बहुत अरसा हो गया था और उसका कभी ख़्याल ही नहीं आया था। मौलाना रूम कहते हैं।

ख़ुश्क तार व ख़ुश्क मग़ज़ व ख़ुश्क पोस्त
अज़ कजा मी आयद ईं आवाज़े दोस्त?

हमारा एक अज़ली दोस्त है "अल्लाह" वही हमारा ख़ालिक़ है, हमारा बारी है, हमारा रब है। उसकी दोस्ती पर कुछ पर्दे पड़ गए हैं, उस पर कुछ ज़हूल तारी हो गया है। क़ुरआन उस दोस्त की याद दिलाने के लिये आया है।

इसके बरअक्स तदब्बुर गहराई में गोताज़न होने को कहते हैं। "क़ुरआन में हो गोताज़न ऐ मर्दे मुसलमान!" तदब्बुर के ऐतबार से क़ुरआन हकीम मुश्किलतरीन किताब है। इसकी वजह क्या है? यह कि इसका मिन्बा और सरचश्मा इल्मे इलाही है और इल्मे इलाही ला-मुतनाही (अन्तहीन) है। यह हक़ीक़त है कि कलाम में मुतकल्लिम की सारी सिफ़ात मौजूद होती हैं, लिहाज़ा यह कलाम ला-मुतनाही है। इसको कोई शख़्स ना अबूर कर सकता है ना गहराई में इसकी तह तक पहुँच सकता है। यह नामुमकिन है, चाहे पूरी-पूरी ज़िन्दगियाँ खपा लें। वह चाहे साहिबे कश्शाफ़ हों, साहिबे तफ़्सीर कबीर हों, कसे बाशद। इसका अहाता करना किसी के लिये मुमकिन नहीं। बाज़ लोग ग़ैर महतात अंदाज़ में यह अल्फ़ाज़ इस्तेमाल कर देते हैं कि "उन्हें क़ुरआन पर बड़ा अबूर हासिल है।" यह क़ुरआन के लिये बड़ा तौहीन आमेज़ कलमा है। अबूर एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँच जाने को कहते हैं। क़ुरआन का तो किनारा ही कोई नहीं है। किसी इंसान के लिये यह मुमकिन नहीं है कि वह क़ुरआन पर अबूर हासिल करे। यह ना मुमकिनात में से है। इसी तरह इसकी गहराई तक पहुँच जाना भी ना मुमकिन है।

इस सिलसिले में एक तम्सील (उदाहरण) से बात किसी क़दर वाज़ेह हो जायेगी। कभी ऐसा भी होता है कि समुन्दर में कोई टेंकर तेल लेकर जा रहा है और किसी वजह से अचानक तेल लीक करने लग जाता है। लेकिन वह तेल सतह समुन्दर के ऊपर ही रहता है, नीचे नहीं जाता। सतह समुन्दर पर ऊपर तेल की तह और नीचे पानी होता है और वह तेल पाँच-दस मील तक फैल जाता है। समुन्दर की अथाह गहराई के बावजूद तेल सतह आब पर ही रहता है। इसी तरह समझिये कि क़ुरआन मजीद की असल हिदायत और असल तज़क्कुर इसकी सतह पर मौजूद है। इस तक रसाई के लिये साइंसदान या फ़लसफ़ी होना, अरबी अदब (साहित्य) का माहिर होना, कलामे जाहिली का आलिम होना ज़रुरी नहीं। सिर्फ़ दो चीज़ें मौजूद हों। पहली ख़ुलूसे नीयत और तलबे हिदायत, दूसरी क़ुरआन से बराहेरास्त हमकलामी का शर्फ़ और इसकी सलाहियत। यह दोनों हैं तो तज़क्कुर का तक़ाज़ा पूरा हो जायेगा। अलबत्ता तदब्बुर के लिये गहराई में उतरना होगा और इस बहरे ज़ख़्ख़ार में गोताज़नी करना होगी। तदब्बुर का हक़ अदा करने के लिये शेरे जाहिली को भी जानना ज़रूरी है। हर लफ़्ज़ की पहचान ज़रूरी है कि जिस दौर में क़ुरआन नाज़िल हुआ उस ज़माने और उस इलाक़े के लोगों में इस लफ़्ज़ का मफ़हूम क्या था,

यह किन मायने में इस्तेमाल हो रहा था? क़ुरआन ने बुनियादी इस्तलाहात वहीं से अख़ज़ की हैं। वही अल्फ़ाज़ जिनको अरब अपने अशआर और ख़ुत्बात के अंदर इस्तेमाल करते थे उन्हीं को क़ुरआन मजीद ने लिया है। चुनाँचे नुज़ूले क़ुरआन के दौर की ज़बान को पहचानना और उसके लिये ज़रूरी महारत का होना तदब्बुर के लिये नाग़ज़ीर (ज़रूरी) है। फिर यह कि अहादीस, इल्मे बयान, मन्तिक़, इन सबको इंसान बतरीक़े तदब्बुर जानेगा तो फिर वह इसका हक़ अदा कर सकेगा।

मौलाना अमीन अहसन इस्लाही साहब ने अपनी तफ़सीर का नाम ही "तदब्बुरे क़ुरआन" रखा है और वह तदब्बुरे क़ुरआन के बहुत बड़े दाई हैं। इसके लिये उन्होंने अपनी ज़िन्दगी में बहुत मेहनत की है। उनके बाज़ शागिर्द हज़रात ने भी मेहनतें की हैं और वक़्त लगाया है। इसके उन तक़ाज़ों को तो उन हज़रात ने बयान किया है, लेकिन तदब्बुरे क़ुरआन का एक और तक़ाज़ा भी है जो बदक़िस्मती से उनके सामने भी नहीं आया। अगर वह तक़ाज़ा भी पूरा नहीं होगा तो असरे हाज़िर के तदब्बुर का हक़ अदा नहीं होगा। वह तक़ाज़ा यह है कि इल्मे इंसानी आज जिस लेवल तक पहुँच गया है, मेटेरियल साइंस के मुख़्तलिफ़ उलूम के ज़िमन में जो कुछ मालूमात इंसान को हासिल हो चुकी हैं और वह ख़्यालात व नज़रियात जिनको आज दुनिया में माना जा रहा है उनसे आगाही हासिल की जाये। अगर इनका इज्माली इल्म नहीं है तो इस दौर के तदब्बुरे क़ुरआन का हक़ अदा नहीं किया जा सकता। क़ुरआन हकीम वह किताब है जो हर दौर के उफ़क़ (Horizon) पर ख़ुर्शीदे ताज़ा की मानिन्द तुलूअ होगी। आज से सौ बरस पहले के क़ुरआन और आज के क़ुरआन में इस हवाले से फ़र्क़ होगा। मतन और अल्फ़ाज़ वही हैं, लेकिन आज इल्मे इंसानी की जो सतह है उस पर इस क़ुरआन के फ़हम और इसके इल्म को जिस तरीक़े से जलवागर होना चाहिये अगर आप इसका हक़ अदा कर रहे हैं तो आप सौ बरस पहले का क़ुरआन पढ़ा रहे हैं, आज का क़ुरआन नहीं पढ़ा रहे। जैसे अल्लाह की शान है: {كُلَّ يَوْمٍ هُوَ فِيْ شَاْنٍ ۝} (सूरह रहमान:29) इसी तरह का मामला क़ुरआन हकीम का भी है।

इसी तरह हिदायते अमली के ज़िमन में इक़्तसादयात, समाजियात और नफ़्सियाते इंसानी के सिलसिले में रहनुमाई और हक़ाइक़ क़ुरआन में मौजूद हैं, उन्हें कैसे समझेंगे? क़ुआरन की असल तालीमात की क़द्र व क़ीमत और उसकी असल evaluation कैसे मुमकिन है अग़र इंसान आज के इक़्तसादी मसाईल को ना जानता हो? इसके बग़ैर वह तदब्बुरे क़ुरआन का हक़ नहीं अदा कर सकता। मसलन आज के इक़्तसादी मसाईल क्या हैं? पेपर करेंसी की हक़ीक़त क्या है? इक़्तसादयात के उसूल व मबादी क्या हैं? बैंकिंग की असल बुनियाद क्या है? किस तरह कुछ लोगों ने इस पूरी नौए इंसानी को मआशी ऐतबार से बेबस किया हुआ है। इस हक़ीक़त को जब तक नहीं समझेंगे तो आज के दौर में क़ुरआन हकीम की इक़्तसादी तालीमात वाज़ेह करने का हक़ अदा नहीं हो सकता।

वाक़या यह है कि आज तदब्बुरे क़ुरआन किसी एक इंसान के बस का रोग ही नहीं रहा, इसके लिये तो एक जमाअत दरकार है। मेरे किताबचे "मुसलमानों पर क़ुरआन मजीद के हुक़ूक़" के बाब "तज़क्कुर व तदब्बुर" में यह तसव्वुर पेश किया गया है कि ऐसी यूनिवर्सिटीज़ क़ायम हों जिनका असल मरकज़ी शौबा (विभाग) "तदब्बुरे क़ुरआन" का हो। जो शख़्स भी इस यूनिवर्सिटी का तालिबे इल्म हो, वह अरबी ज़बान सीखे और क़ुरआन पढ़े। लेकिन इस मरकज़ी शौबे के गिर्द तमाम उलूमे अक़्ली, जैसे मन्तिक़, मा बाद अल् तबीअ'यात, अख़्लाक़ियात, नफ़्सियात और इलाहियात, उलूमे अमरानी (सामाजिक) जैसे मआशियात, सियासियात और क़ानून, और उलूमे तबीई, जैसे रियाज़ी (गणित), कीमिया (रसायन), तबीअ'यात (भौतिक), अरदियात (भूविज्ञान) और फ़ल्कियात (खगोलीय) वग़ैरह के शौबों का एक हिसार (दिवार) क़ायम हो, और हर एक तालिबे इल्म "तदब्बुरे क़ुरआन" की लाज़िमन और एक या उससे ज़्यादा दूसरे उलूम की अपने ज़ौक़ (समझ) के मुताबिक़ तहसील (study) करे और इस तरह इन शौबा हाए उलूम में क़ुरआन के इल्म व हिदायत को तहक़ीक़ी तौर पर अख़ज़ करके मुअस्सर (प्रभावी) अंदाज़ में पेश कर सके। तालिबे इल्म वह भी पढ़े तब मालूम होगा कि इस शौबे में इंसान आज कहाँ खड़ा है और क़ुरआन क्या कह रहा है। फ़लाँ शौबे में नौए इंसानी के क्या मसाईल हैं और इस ज़िमन में क़ुरआन हकीम क्या कहता है। मुख़्तलिफ़ शौबे मिल कर तदब्बुरे क़ुरआन की ज़रूरत को पूरा कर सकते हैं जो वक़्त का अहम तक़ाज़ा है।

जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, तज़क्कुर के ऐतबार से क़ुरआन आसान तरीन किताब है जो हमारी फ़ितरत की पुकार है। "मैंने यह जाना कि गोया यही मेरे दिल में था!" अगर इंसान की फ़ितरत मस्ख़शुदा (विकृत) नहीं है, बल्कि सलीम (ठीक) है, सालेह है, सलामती पर क़ायम है तो वह क़ुरआन को अपने

दिल की पुकार महसूस करेगा, उसके और क़ुरआन के दरमियान कोई हिजाब ना होगा, वह उसे अपने दिल की बात समझेगा, उसके लिये अरबी ज़बान का सिर्फ़ इतना इल्म काफ़ी है कि बराहेरास्त हमकलाम हो जाये। जबकि तदब्बुर के तक़ाज़े पूरे करने किसी एक इंसान के बस का रोग़ नहीं है। जो शख़्स भी इस मैदान में क़दम रखना चाहे उसके ज़हन में एक इज्माली ख़ाका ज़रूर होना चाहिये कि आज जदीद साइंस के ऐतबार से इंसान कहाँ खड़ा है। जब इंसान को अपने मक़ाम की मारफ़त हासिल हो जाये तो वह क़ुरआन मजीद से बेहतर तौर पर फ़ायदा उठा सकता है। इसकी मिसाल ऐसी है कि समुन्दर में तो बेतहाशा पानी है, आप अग़र पानी लेना चाहते हैं तो जितना बड़ा कटोरा, कोई देग, देगची या बाल्टी आपके पास है उसी को आप भर लेंगे। यानि जितना आपका ज़र्फ़ (container) होगा उतना ही आप समुन्दर से पानी अख़ज़ कर सकेगें। इसका यह मतलब तो हरगिज़ ना होगा कि समुन्दर में पानी ही इतना है! इंसानी ज़हन का ज़र्फ उलूम से बनता है। यह ज़र्फ़ आज से पहले बहुत तंग था। एक हज़ार साल पहले का ज़र्फ़े ज़हनी बहुत महदूद था। इंसानी उलूम के ऐतबार से आज का ज़र्फ़ बहुत वसीअ है। अगर आज आपको क़ुरआन मजीद से हिदायत हासिल करनी है तो आपको अपना ज़र्फ़ इसके मुताबिक वसीअ करना होगा। और अगर कुछ लोग अभी उसी साबिक़ दौर में रह रहे हैं तो क़ुरआन हकीम के मख़्फ़ी हक़ाइक़ उन पर मुन्कशिफ़ नहीं होंगे।

6) <u>अमली हिदायात और मज़ाहिरे तबीई के बारे में मुतज़ाद तर्ज़े अमल</u>

क़ुरआन हकीम में साइंसी उलूम के जो हवाले आते हैं और उसमें जो अमली हिदायात मिलती हैं, उनके ज़िमन में यह बात पेशेनज़र रहनी चाहिये कि एक ऐतबार से हमें आगे से आगे बढ़ना है और दूसरे ऐतबार से हमें पीछे से पीछे जाना है। चुनाँचे क़ुरआन हकीम पर ग़ौरो फ़िक्र करने वाले का अंदाज़ (attitude) दो ऐतबारात से बिल्कुल मुतज़ाद (opposite) होना चाहिये। साइंसी हवाले जो क़ुरआन में आये हैं उनकी ताबीर करने में आगे से आगे जाइये। आज इंसान को क्या मालूमात हासिल हो चुकी हैं, कौनसे हक़ाइक़ पाये सबूत को पहुँच चुके हैं, उनके हवाले पेशेनज़र रहेंगे। इसमें पीछे जाने की ज़रूरत नहीं है। इमाम राज़ी और दीगर क़दीम मुफस्सिरीन को देखने की ज़रूरत नहीं है। बल्कि इस ज़िमन में नबी अकरम ﷺ ने भी कुछ फ़रमाया है तो वह भी हमारे लिये लाज़िम नहीं है। इसलिये कि हुज़ूर ﷺ साइंस और टेक्नोलॉजी सिखाने नहीं आये थे। ताबीरे नख़ल का वाक़या पीछे गुज़र चुका है, इसके ज़िमन में आप ﷺ ने फ़रमाया था: ((اَنْتُمْ اَعْلَمُ بِاَمْرِ دُنْيَاكُمْ)) "अपने दुनियावी मामलात के बारे में तुम मुझसे ज़्यादा जानते हो।" तजुर्बाती उलूम के मुताबिक़ जो तुम्हें इल्म हासिल है उस पर अमल करो। लेकिन दीन का जो अमली पहलू है उसमें पीछे से पीछे जाइये। यहाँ यह दलील नहीं चलेगी कि जदीद दौर के तक़ाज़े कुछ और हैं, जबकि यह देखना होगा कि रसूल ﷺ ने और ﷺ के सहाबा (रज़ि०) ने क्या किया। इस हवाले से क़ुरआन के तालिबे इल्म का रुख़ पीछे की तरफ़ होना चाहिये कि अस्लाफ़ ने क्या समझा। मुताख़रीन को छोड़ कर मुतक़दमीन की तरफ़ जाइये। मुतक़दमीन से तबअ ताबईन, फिर ताबईन से होते हुए "مَا اَنَا عَلَيْهِ وَ اَصْحَابِىْ" यानि हुज़ूर ﷺ और सहाबा (रज़ि०) के अमल तक पहुँचिये। इस ऐतबार से इक़बाल का यह शेर सही मुन्तबिक़ होता है।

बमुस्तफ़ा ﷺ बरसाँ ख़्वीश रा कि दीं हमा ऊस्त
अग़र बऊव नरसीदी तमाम बू-लहबी सत!

दीन का अमली पहलू वही है जो अल्लाह के रसूल ﷺ से साबित है। इसमें अग़रचे रिवायात के इख़्तलाफ़ की वजह से कुछ फ़र्क हो जायेगा मगर दलील यही रहेगी: ((صَلُّوْا كَمَا رَاَيْتُمُوْنِىْ اُصَلِّىْ))(1) नमाज़ इस तरह पढ़ो जैसे तुम मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखते हो।" अब नमाज़ के जुज़यात के बारे में रिवायात में कुछ फ़र्क़ मिलता है। किसी के नज़दीक एक रिवायत क़ाबिले तरजीह है, किसी के नज़दीक दूसरी। इस ऐतबार से जुज़यात में थोड़ा बहुत फ़र्क़ हो जाए तो कोई हर्ज नहीं। अलबत्ता दलील यही रहेगी कि रसूल ﷺ और सहाबा (रज़ि०) का अमल यह था। हुज़ूर अकरम ﷺ का यह फ़रमान भी नोट कर लीजिये: ((فَعَلَيْكُمْ بِسُنَّتِىْ وَ سُنَّةِ الْخُلَفَاءِ الرَّاشِدِيْنَ الْمَهْدِيِّيْنَ))(2) "तुम पर मेरी सुन्नत इख़्तियार करना लाज़िम है और मेरे ख़ुल्फ़ा-ए-राशिदीन की सुन्नत जो हिदायत याफ़्ता हैं।" चुनाँचे हुज़ूर ﷺ का अमल और ख़ुल्फ़ा-ए-राशिदीन का अमल हमारे लिये लायक़ तक़लीद है। फिर इसी से मुत्तसिल (connecting) वह चीज़ें हैं जिन पर हमारी चौदह सौ बरस की तारीख़ में उम्मत का इज्माअ रहा है। अब दुनिया इस्लामी सजाओं को वहशियाना क़रार देकर हम पर असर अंदाज़ होने की कोशिश कर रही है और हमें

बुनियादपरस्त (fundamentalist) की गाली देकर चाहती है कि हमारे अंदर माज़रत ख़वाहाना रवैया पैदा कर दे, मगर हमारा तर्ज़े अमल यह होना चाहिये कि इन बातों से क़तअन मुतास्सिर हुए बग़ैर दीन के अमली पहलू के बारे में पीछे से पीछे जाते हुए {مُحَمَّدٌ رَّسُوْلُ اللّٰهِ وَالَّذِيْنَ مَعَهٗٓ} (सूरह फ़तह:1) तक पहुँच जायें!

बदकिस्मती से हमारे आम उल्माओं का हाल यह है कि उन्होंने अरबी उलूम तो पढ़े हैं, अरबी मदरसों से फ़ारिग़ अल् तहसील हैं, मगर वह आगे पढ़ने की सलाहियत से आरी (मुक्त) हैं। उन्होंने साइंस नहीं पढ़ी, वह जदीद उलूम से वाक़िफ़ नहीं, वह नहीं जानते आइंस्टीन किस बला का नाम है और उस शख़्स के ज़रिये तबीअ'यात के अंदर कितनी बड़ी तब्दीली आ गई है। न्यूटोनियन इरा क्या था और आइंस्टीन का दौर क्या है, उन्हें क्या पता! आज कायनात का तसव्वुर क्या है, एटम की साख़्त क्या है, उन्हें क्या मालूम! एटम तो पुरानी बात हो गई, अब तो इंसान न्यूट्रॉन प्रोटोन से भी कहीं आगे की बारीकियों तक पहुँच चुका है। अब इन चीज़ों को नहीं जानेंगे तो इन हक़ाइक़ को सही तौर पर समझना मुमकिन नहीं होगा। मज़ाहिर तबीई का मामला तो आगे से आगे जा रहा है। इसकी ताबीर जदीद से जदीद होनी चाहिये। अलबत्ता इस ज़िमन मे यह फ़र्क़ ज़रूर मल्हूज़ रहना चाहिये कि एक तो साइंस के मैदान के महज़ नज़रियात (theories) हैं जिन्हें मुसल्लमा हक़ाइक़ का दर्जा हासिल नहीं है, जबकि एक वह चीज़ें हैं तजुर्बाती तौसीक़ (मान्यता) हो चुकी है और उन्हें अब मुसल्लमा हक़ाइक़ का दर्जा हासिल है। इन दोनो में फ़र्क़ करना होगा। ख़्वाहमोंख़्वाह कोई भी नज़रिया सामने आ जाये या कोई मफ़रूज़ा (hypothesis) मंज़रे आम पर आ जाये इस पर क़ुरान को मुन्तबिक़ करने की कोशिश करना सई ला हासिल बल्कि मज़र (ख़तरनाक) शय है। लकिन उसूली तौर पर हमें इन चीज़ों की ताबीर में आगे से आगे बढ़ना है। और जहाँ तक दीन के अमली हिस्से का ताल्लुक़ है जिसे हम शरीअत कहते हैं, यानि अवामिर व नवाही, हलाल व हराम, हुदूद व ताज़िरात वग़ैरह, इन तमाम मामलात में हमें पीछे से पीछे जाना होगा, यहाँ तक की मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के क़दमों में अपने आप को पहुँचा दीजिये। इसलिये कि दीन इसी का नाम है। : बमुस्तफ़ा ﷺ बरसाँ ख़वीश रा कि दीं हमा ऊस्त!

7) फ़हमे क़ुरआन के लिये जज़्बा-ए-इन्क़लाब की ज़रूरत

फ़हमे क़ुरआन के लिये बुनियादी उसूल और बुनियादी हिदायात या इशारात के ज़िमन में मौलाना अबुल आला मौदूदी (रहि०) ने यह बात बड़ी ख़ूबसूरती से तफ़्हीमुल क़ुरआन के मुक़दमे में कही है कि क़ुरआन महज़ नज़रियात और ख़्यालात की किताब नहीं है कि आप किसी ड्राइंगरूम में या कुतुबख़ाने में आराम से कुर्सी पर बैठ कर इसे पढ़ें और इसकी सारी बातें समझ जायें। कोई मुहक़्क़िक़ या रिसर्च स्कॉलर डिक्शनरियों और तफ़्सीरों की मदद से इसे समझना चाहे तो नहीं समझ सकेगा। इसलिये कि यह एक दावत और तहरीक की किताब है। मौलाना मरहूम लिखते हैं:

> "......अब भला यह कैसे मुमकिन है कि आप सिरे से नज़ाए कुफ़्र व दीन और मारका-ए-इस्लाम व जाहिलियत के मैदान में क़दम ही ना रखें और इस कशमकश की किसी मंज़िल से गुज़रने का आपको इत्तेफ़ाक़ ही ना हुआ हो और फिर महज़ क़ुरआन के अल्फ़ाज़ पढ़-पढ़ कर इसकी सारी हक़ीक़तें आपके सामने बेनक़ाब हो जायें! इसे तो पूरी तरह आप उसी वक़्त समझ सकते हैं जब इसे लेकर उठें और दावत इलल्लाह का काम शुरू करें और जिस-जिस तरह यह किताब हिदायत देती जाये उसी तरह क़दम उठाते चले जायें....."

क़ुरआन मजीद की बहुत सी बड़ी अहम हक़ीक़तें इसके बग़ैर मुन्कशिफ़ नहीं होगी, इसलिये कि क़ुरआन एक "किताबे इन्क़लाब" (Manual of Revolution) है। इस क़ुरआन ने इंसानी जद्दोजहद के ज़रिये अज़ीम इन्क़लाब बरपा किया है। मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और आप ﷺ के साथी (रज़ि०) एक हिज़्बुल्लाह थे, एक जमाअत और एक पार्टी थे, उन्होंने दावत और इन्क़लाब के तमाम मराहिल को तय किया और हर मरहले पर उसकी मुनासिबत से हिदायात नाज़िल हुईं। एक मरहला वह भी था कि हुक्म दिया जा रहा था कि मार खाओ लेकिन हाथ मत उठाओ: {كُفُّوْٓا اَيْدِيَكُمْ} (सूरतुन्निसा 77)। फिर एक मरहला वह भी आया कि हुक्म दे दिया गया कि अब आगे बढ़ो और जवाब दो, उन्हें क़त्ल करो। सूरह अन्फ़ाल में इर्शाद हुआ:

وَقَاتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ

"और इनसे जंग करते रहो यहाँ तक कि फ़ितना ख़त्म हो जाये और दीन कुल का कुल

الدِّيْنُ كُلُّهٗ لِلّٰهِ *अल्लाह के लिये हो जाये।"* (आयत:39)

सूरह अल् बक़रह में फ़रमाया:

وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوْهُمْ وَاَخْرِجُوْهُمْ مِّنْ حَيْثُ اَخْرَجُوْكُمْ *"और उनको क़त्ल कर दो जहाँ कहीं तुम उनको पाओ और उन्हें निकालो जहाँ से उन्होंने तुमको निकाला है।"* (आयत:191)

दोनों मराहिल में यक़ीनन फ़र्क़ है, बल्कि बज़ाहिर तज़ाद (contradiction) है, लेकिन जानना चाहिये कि यह एक ही जद्दोजहद, के दो मुख़्तलिफ़ मराहिल हैं। फिर एक दाई जब दावत देता है तो जो मसाईल उसे दरपेश होते हैं उनको एक ऐसा शख़्स क़त्अन नहीं जान सकता जिसने उस कूचे में क़दम ही नहीं रखा है। उसे क्या अहसास होगा कि मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ से यह क्यों कहा जा रहा है: "क़सम है क़लम की और जो कुछ लिखतें हैं! आप अपने रब के फ़ज़ल से मजनून नहीं हैं। और आपके लिये तो बेइन्तहा अज्र है।" यानि ऐ नबी ﷺ आप महज़ून और ग़मग़ीन ना हों। आप इनके कहने से (मआज़ अल्लाह) मजनून तो नहीं हो जायेंगे। ऐसे अल्फ़ाज़ जब किसी को कहे जाते हैं तो उसका ही दिल जानता है कि उस पर क्या गुज़रती है। अंदाज़ा लगाइये कि क़ुरैशे मक्का से इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ सुन कर क़ल्बे मुहम्मदी ﷺ पर क्या कैफ़ियत तारी होती होगी। यह क़ुरआन हम पर reveal नहीं हो सकता जब तक उन अहसासात व कैफ़ियात के साथ हम ख़ुद दो-चार ना हों। जब तक कि हमारी कैफ़ियात व अहसासात उसके साथ ममास्लत (समानता) ना रखें हम कैसे समझेंगे कि क्या कहा जा रहा है और किस कैफ़ियत के अन्दर कहा जा रहा है।

मेडिकल कॉलेज में दाखिल होने वाले तलबा (students) सबसे पहले जिस किताब से मुतारफ़ (indtroduced) होते हैं वह "Manual of Dissection" है। उसमें हिदायात होती हैं कि लाश के बदन पर यहाँ शग़ाफ़ (चीर) लगाओ और खाल हटाओ तो तुम्हें यह चीज़ नज़र आयेगी, यहाँ शग़ाफ़ लगाओ तो तुम्हें फ़लाँ शय नज़र आयेगी, इसे यहाँ से हटाओगे तो तुम्हें इसके पीछे फ़लाँ चीज़ छुपी हुई नज़र आयेगी। इस ऐतबार से क़ुरआन हकीम "Manual of Revolution" है। जब तक कोई शख़्स इन्क़लाबी जद्दोजहद में शरीक नहीं होगा क़ुरआन हकीम के मआरफ़ (Teachings) का बहुत बड़ा ख़ज़ाना उसके लिये बंद रहेगा। एक शख़्स फ़क़ीह है, मुफ़्ती है तो वह फ़िक़्ही अहकाम को ज़रूर उसके अंदर से निकाल लेगा। आपको मालूम होगा कि बाज़ तफ़ासीर "अहकामुल क़ुरान" के नाम से लिखी गई हैं जिनमें सिर्फ़ उन्हीं आयात के बारे में गुफ़्तगू और बहस है जिनसे कोई ना कोई फ़िक़्ही हुक्म मुस्तनबत (derived) होता है। मसलन हलत (सिद्धान्त) व हुरमत का हुक्म, किसी शय के फ़र्ज़ होने का हुक्म जिससे अमल का मामला मुताल्लिक़ है। बाकी तो गोया क़सस (क़िस्से) हैं, तारीखी हक़ाइक़ व वाक़्यात हैं। यहाँ तक कि क़िस्सा आदम व इब्लीस जो सात मर्तबा क़ुरआन में आया है, या ईमानी हक़ाइक़ के लिये जो दलीलें व बराहीन (arguments) हैं उनसे कोई गुफ़्तगू नहीं की गई, बल्कि सिर्फ़ अहकामुल क़ुरआन जो क़ुरान का एक हिस्सा है, उसी को अहमियत दी गई है।

क़ुरआन के तदरीजन नुज़ूल का सबब यह है कि साहिबे क़ुरआन ﷺ की जद्दोजहद के मुख़्तलिफ़ मराहिल को समझा जाये, वरना फ़िक़्ही अहकाम तो मुरत्तब करके दिये जा सकते थे, जैसा कि हज़रत मूसा अलै० को दे दिये गए थे "अहकामे अशरा" तख़्तियों पर कन्दह (खुदे हुए) थे जो मूसा अलै० के सुपुर्द कर दिये गये। लेकिन मुहम्मह रसूल अल्लाह ﷺ की इन्क़लाबी जद्दोजहद जिस-जिस मरहले से गुज़रती रही क़ुरआन में उस मरहले से मुताल्लिक़ आयतें नाज़िल होती रहीं। तंज़ील की तरतीब के अंदर मुज़मर असल हिकमत यही तो है कि आँहुज़ूर ﷺ की जद्दोजहद, हरकत और दावत के मुख़्तलिफ़ मरहले सामने आ जाते हैं। अब भी क़ुरआन की बुनियाद पर और मन्हजे इन्क़लाबे नबवी ﷺ पर जो जद्दोजहद होगी उसे इन तमाम मरहलों से होकर गुज़रना होगा। चुनाँचे कम से कम यह तो हो कि इस जद्दोजहद को इल्मी तौर पर फ़हम के लिये इंसान सामने रखे। अगर इल्मी ऐतबार से सीरतुन्नबी ﷺ का ख़ाका ज़हन में मौजूद ना हो तो फ़हम किसी दर्जे में भी हासिल नहीं होगा। फ़हमे हक़ीक़ी तो उसी वक़्त हासिल होगा जब आप ख़ुद इस जद्दोजहद में लगे हुए हैं और वही मसाईल आपको पेश आ रहे हैं तो अब मालूम होगा कि यह मक़ाम और मरहला या मसला वह था जिसके लिये यह हिदायते क़ुरआनी आई थी।

8) क़ुरान के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने का सुबूत

इस ज़िमन में यह जानना भी ज़रूरी है कि क़ुरआन के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने का सुबूत क्या है। याद रखिये कि सुबूत दो क़िस्म के होते हैं, ख़ारजी और दाख़िली। ख़ारजी सुबूत ख़ुद मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ का यह फ़रमाना है कि यह कलाम मुझ पर नाज़िल हुआ। फिर आप ﷺ की शहादत भी दो हैसियतों से है। आप ﷺ की शख़्सन शहादत ज़्यादा नुमाया उस वक़्त थी जबकि क़ुरआन नाज़िल हुआ और हुज़ूर ﷺ ख़ुद मौजूद थे। वह लोग भी वहाँ मौजूद थे जिन्होंने आप ﷺ की चालीस साला ज़िन्दगी का मुशाहदा किया था, जिन्हें कारोबारी शख़्सियत की हैसियत से आप ﷺ के मामलात का तजुर्बा था। जिनके सामने आप ﷺ की सदाक़त, दयानत, अमानत और इफ़ा-ए-अहद का पूरा नक्शा मौजूद था। बल्कि उससे आगे बढ़ कर जिनके सामने चेहरा-ए-मुहम्मदी ﷺ मौजूद था। सलीमुल फ़ितरत इंसान आप ﷺ का रुए अनवर देख कर पुकार उठता था: سُبحَانَ اللهِ مَا هٰذَا بِوَجْہِ كَذَّابٍ (अल्लाह पाक है, यह चेहरा किसी झूठे का हो ही नहीं सकता)। तो हुज़ूर ﷺ की शख़्सियत, आप ﷺ की ज़ात और आप ﷺ की शहादत कि यह क़ुरआन मुझ पर नाज़िल हुआ, सबसे बड़ा सुबूत था।

इस ऐतबार से याद रखिये कि मुहम्मह रसूल अल्लाह ﷺ और क़ुरआन बाहम एक दुसरे के शाहिद (गवाह) हैं। क़ुरआन मुहम्मह ﷺ की रिसालत पर गवाही देता है:

{يٰسٓ ۝ وَالْقُرْاٰنِ الْحَكِيْمِ ۝ اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ۝}

क़ुरआन गवाही दे रहा है कि आप ﷺ अल्लाह के रसूल हैं और क़ुरान के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने का सुबूत ज़ाते मुहम्मदी ﷺ है। इसका एक पहलु तो वह है कि नुज़ूले क़ुरआन के वक़्त रसूल अल्लाह ﷺ की ज़ात, आप ﷺ की शख़्सियत, आप ﷺ की सीरत व किरदार, आप ﷺ का अख्लाक़, आप ﷺ का वजूद, आप ﷺ की शबीहा (छवि) और चेहरा सामने था। दूसरा पहलु जो दायमी है और आज भी है वह हुज़ूर ﷺ का वह कारनामा है जो तारीख़ की अनमिट शहादत है। आप एच० जि० वेल्ज़, एम० एन० राय या डॉक्टर माइकल हार्ट से पूछिये कि वह कितना अज़ीम कारनामा है जो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ ने सरअंजाम दिया। और आप ﷺ ख़ुद कह रहे हैं कि मेरा आला इंक़लाब क़ुरआन है, यही मेरा अस्लहा और असल ताक़त है, यही मेरी क़ुव्वत का सरचश्मा और मेरी तासीर का मिन्बा है। इससे बड़ी गवाही और क्या होगी? यह तो क़ुरआन के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने की ख़ारजी शहादत है। यानि "हुज़ूर ﷺ की शख़्सियत।" शहादत का यह पहलु हुज़ूर ﷺ के अपने ज़माने में और आप ﷺ की हयाते दुनयवी के दौरान ज़्यादा नुमाया था। और जहाँ तक आप ﷺ के कारनामे का ताल्लुक़ है इस पर तो अक़्ल दंग रह जाती है। देखिये माइकल हार्ट मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के बारे में यह कहने पर मजबूर हुआ है:

> *"He was the only man in history who has supremely successful on both the religious and secular levels."*
>
> यानि तारीखे इंसानी में सिर्फ़ वही वाहिद शख़्स हैं जो सेक्युलर और मज़हबी दोनों मैदानों में इन्तहाई कामयाब रहे---

और आप ﷺ का यह इर्शाद है कि यह अल्लाह का कलाम है। तो ख़ारजी सुबूत गोया बतमाम व कमाल हासिल हो गया।

क़ुरआन के मुनज़्ज़ल मिनलल्लाह होने का दाख़िली सुबूत यह है कि इंसान का दिल गवाही दे। दाख़िली सुबूत इंसान का अपना बातिनी तजुर्बा होता है। अगर हज़ार आदमी कहें चीनी मीठी है मगर आपने ना चखी हो तो आप कहेंगे कि जब इतने लोग कह रहे हैं मीठी है तो होगी मीठी। ज़ाहिर है एक हज़ार आदमी मुझे क्यों धोखा देना चाहेंगे, यक़ीनन मीठी होगी। लेकिन "होगी" से आगे बात नहीं बढ़ती। अलबत्ता जब इंसान चीनी को चख ले और उसकी अपनी हिसे ज़ायका (sense of taste) बता रही हो कि यह मीठी है तो अब "होगी" नहीं बल्कि "है"। "होगी" और "है" मे दरहक़ीक़त इंसान के ज़ाती तजुर्बे का फ़र्क़ है। अफ़सोस यह है कि आज की दुनिया सिर्फ़ ख़ारजी तजुर्बों को जानती है। एक तजुर्बा इससे कहीं ज़्यादा मुअत्बर है और वह बातनी तजुर्बा है, यानि किसी शय पर आपका दिल गवाही दे। इक़बाल ने क्या ख़ूब कहा है:

तू अरब हो या अजम हो तेरा ला इलाहा इल्ला
लुग़ते ग़रीब, जब तक तेरा दिल ना दे गवाही!

ला इलाहा इल्लल्लाह के लिये अगर दिल ने गवाही ना दी तो इंसान ख़्वाह अरबी नस्ल हो, अरबी ज़बान जानता हो, लेकिन उसके लिये यह कलमा लुग़ते ग़रीब ही है, नामानूस सी बात है, उसके अंदर पेवस्त नहीं है,

उसको मुतास्सिर नहीं करती। क़ुरआन इंसान की अपनी फ़ितरत को अपील करता है और इंसान को अपने मन में झाँकने के लिये आमादा करता है। वह कहता है अपने मन में झाँको, देखो तो सही, ग़ौर तो करो

اَفِی اللّٰہِ شَکٌّ فَاطِرِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ

"क्या तुम्हें अल्लाह के बारे में शक है जो आसमानों और जमीन का पैदा करने वाला है?" (10:इब्राहीम)

اَىِٕنَّكُمْ لَتَشْهَدُوْنَ اَنَّ مَعَ اللّٰهِ اٰلِهَةً اُخْرٰى

"क्या तुम वाक़िअतन यह गवाही देते हो कि अल्लाह के साथ कोई और माबूद भी है?" (अल् अनाम:19)

देखना तक़रीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा
मैंने यह जाना कि गोया यह ही मेरे दिल में है!

अल्लामा इब्ने क़य्यिम (रहि०) ने इसकी बड़ी ख़ूबसूरत ताबीर की है। वह कहते हैं कि बहुत से लोग ऐसे हैं कि जब क़ुरआन पढ़ते हैं तो यूँ महसूस करते हैं कि वह मुस्हफ़ से नहीं पढ़ रहे बल्कि क़ुरआन उनके लौहे क़ल्ब पर लिखा हुआ है, वहाँ से पढ़ रहे हैं। गोया फ़ितरते इंसानी को क़ुरआन मजीद के साथ इतनी हम-आहंगी (एकता) हो जाती है।

हमारे दौर के एक सूफ़ी बुज़ुर्ग कहा करते हैं कि रूहे इंसानी और क़ुरआन हकीम एक ही गाँव के रहने वाले हैं। जैसे एक गाँव के रहने वाले एक दूसरे को पहचानते हैं और बाहम इन्सियत (attached together) महसूस करते हैं ऐसा ही मामला रूहे इंसानी और क़ुरआन हकीम का है। क़ुरआन को पढ़ कर और सुन कर रूहे इंसानी महसूस करती है कि इसका मिन्बा और सरचश्मा वही है जो मेरा है। जहाँ से मैं आई हूँ यह कलाम भी वहीं से आया है। यक़ीनन इस कलाम का मिन्बा और सरचश्मा वही है जो मेरे वजूद, मेरी हस्ती और मेरी रूह का मिन्बा और सरचशमा है। यह हम-आहंगी (एकता) है जो असल बातिनी तजुर्बा बन जाये तब ही यक़ीन होता है कि यह कलाम वाक़िअतन अल्लाह का है।

❀ ❀ ❀

<u>बाब हफ़्तम (सातवाँ)</u>

एजाज़े क़ुरआन के अहम और बुनियादी वजूह (वजहें)

<u>क़ुरआन और साहिबे क़ुरआन ﷺ का बाहमी ताल्लुक़</u>

मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि क़ुरआन मजीद और नबी अकरम ﷺ दोनों एक-दूसरे के शाहिद हैं। क़ुरआन के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने की सबसे बड़ी और सबसे मौअतबर (trusted) ख़ारजी गवाही नबी अकरम ﷺ की अपनी गवाही है। आप ﷺ की शख़्सियत, आप ﷺ का किरदार, आप ﷺ का चेहरा-ए-अनवर अपनी-अपनी जगह पर गवाह हैं। हमारे लिये अग़रचे आप ﷺ की सीरत आज भी ज़िन्दा व पाइन्दा है, किताबों में दर्ज है, लेकिन एक मुजस्सम इंसानी शख़्सियत की सूरत में आप ﷺ हमारे सामने मौजूद नहीं हैं, हम आप ﷺ के रूए अनवर की ज़ियारत से महरूम हैं। ताहम आप ﷺ का कारनामा ज़िन्दा व ताबन्द है और इसकी गवाही हर शख़्स दे रहा है। हर मौर्रिख (इतिहासकार) ने तस्लीम किया है, हर मुफ़क्किर (Thinker) ने माना है कि तारीखे इंसानी का अज़ीम-तरीन इन्क़लाब वह था जो हुज़ूर ﷺ ने बरपा किया। आप ﷺ की यह अज़मत आज भी मुबरहन (स्पष्ट) है, अशकारा (openly) है, अज़हर मिनश्शम्श (express evident) है। चुनाँचे क़ुरआन के मुनज्ज़ल मिनल्लाह और कलामे इलाही होने पर सबसे बड़ी ख़ारजी गवाही ख़ुद नबी अकरम ﷺ हैं, और नबी अकरम ﷺ के नबी और रसूल होने का सबसे बड़ा गवाह, सबसे बड़ा शाहिद और सबसे बड़ा सुबूत ख़ुद क़ुरआन मजीद है।

इस ऐतबार से यह दोनों जिस तरह लाज़िम व मलज़ूम हैं इसके लिये मैं क़ुरआन हकीम के दो मक़ामात से इस्तशहाद (शपथपत्र) कर रहा हूँ। सूरह अल् बय्यिना (आयत:1) में फ़रमाया:

لَمْ يَكُنِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ وَالْمُشْرِكِيْنَ مُنْفَكِّيْنَ حَتّٰى تَاْتِيَهُمُ الْبَيِّنَةُ

"अहले किताब में से जिन लोगों ने कुफ़्र किया और मुशरिक बाज़ आने वाले ना थे यहाँ तक कि उनके पास "बय्यिना" आ जाती।"

"بَيِّنَة" खुली और रोशन दलील को कहते हैं। ऐसी रोशन हक़ीक़त जिसको किसी ख़ारजी दलील की मज़ीद हाजत ना हो वह "بَيِّنَة" है। जैसे हम अपनी गुफ़्तगू में कहते हैं कि यह बात बिल्कुल बय्यिन है, बिल्कुल वाज़ेह है, इस पर किसी क़ील व क़ाल की हाजत ही नहीं है। बल्कि अगर बय्यिना पर कोई दलील लाने की कोशिश की जाये तो किसी दर्जे में शक व शुबह तो पैदा किया जा सकता है, उस पर यक़ीन में इज़ाफ़ा नहीं किया जा सकता। और यह بَيِّنَة क्या है? फ़रमाया:

رَسُوْلٌ مِّنَ اللّٰهِ يَتْلُوْا صُحُفًا مُّطَهَّرَةً ۝ فِيْهَا كُتُبٌ قَيِّمَةٌ ۝

"एक रसूल अल्लाह की जानिब से जो पाक सहीफ़े पढ़ कर सुनाता है, जिनमें बिल्कुल रास्त (सच) और दुरुस्त तहरीरें लिखी हुई हों।" (आयत:2-3)

यहाँ क़ुरान हकीम की सूरतों को अल्लाह की किताबों से ताबीर किया गया है, जो क़ायम व दायम हैं और हमेशा-हमेश रहने वाली हैं। तो गोया रसूल ﷺ की शख़्सियत और अल्लाह का यह कलाम जो उन पर नाज़िल हुआ, दोनों मिलकर "بَيِّنَة" बनते हैं।

मैंने क़ुरान फ़हमी का यह उसूल बारहा (बार-बार) अर्ज़ किया है कि क़ुरआन मजीद में अहम मज़ामीन (articles) कम से कम दो जगह ज़रूर आते हैं। चुनाँचे इसकी नज़ीर (उदाहरण) सूरह अत् तलाक़ में मौजूद है। इसकी आयत 10 इन अल्फ़ाज़ पर ख़त्म होती है:

قَدْ اَنْزَلَ اللّٰهُ اِلَيْكُمْ ذِكْرًا ۝

"अल्लाह ने तुम्हारी तरफ़ एक ज़िक्र नाज़िल कर दिया है।"

और यह ज़िक्र क्या है? फ़रमाया:

رَّسُوْلًا يَّتْلُوْا عَلَيْكُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ مُبَيِّنٰتٍ لِّيُخْرِجَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ مِنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ

"एक ऐसा रसूल जो तुम्हें पढ़ कर सुना रहा है अल्लाह की आयात जो हर शय को रोशन कर देने वाली (और हर हक़ीक़त को मुबरहन [स्पष्ट] कर देने वाली) हैं, ताकि ईमान लाने वालों और नेक अमल करने वालों को तारीकियों (अंधेरों) से निकाल कर रोशनी में ले आये।"

यहाँ "اٰيٰتٍ بَيِّنٰتٍ" के बजाये "اٰيٰتٍ مُّبَيِّنٰتٍ" आया है। "बय्यिन" वह चीज़ है जो ख़ुद रोशन है और "मुबय्यिन" वह चीज़ है जो दूसरी चीज़ों को रोशन करती है, हक़ाइक़ को उजागर करती है। तो यहाँ पर ज़िक्र की जो तावील की गई कि {رَّسُوْلًا يَّتْلُوْا عَلَيْكُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ مُبَيِّنٰتٍ} इससे वाज़ेह हुआ कि क़ुरआन और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ एक-दूसरे के साथ इस तरह जुड़े हुए और मिले हुए हैं कि एक हयातयाती वजूद (Organic Whole) बन गये हैं। यह एक-दूसरे के लिये शाहिद भी हैं और एक-दूसरे के लिये complimentary भी हैं। इस हवाले से यह दोनों हक़ीक़ते इस तरह जमा हैं कि एक-दूसरे से जुदा नहीं की जा सकतीं।

<u>मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ का असल मोअज्ज़ह (चमत्कार): क़ुरान हकीम</u>

अगली बात यह समझिये कि नबी अकरम ﷺ की रिसालत का असल सबूत या बा अल्फ़ाज़े दीगर आप ﷺ का असल मोअज्ज़ह (चमत्कार), बल्कि वाहिद मोअज्ज़ह क़ुरआन हकीम है। यह बात ज़रा अच्छी तरह समझ लीजिये। "मोअज्ज़ह" का लफ्ज़ हमारे यहाँ बहुत आम हो गया है और हर ख़र्क़े आदत शय को मोअज्ज़ह शुमार किया जाता है। मोअज्ज़ह के लफ़्ज़ी मायने आजिज़ कर देने वाली शय के हैं। क़ुरआन मजीद में "عجز" माद्दे से बहुत से अल्फ़ाज़ आते हैं, लेकिन हमारे यहाँ इस्तलाह के तौर पर इस लफ्ज़ का जो इत्लाक़ किया जाता है वह क़ुरआन हकीम में मुस्तमिल नहीं है, बल्कि अल्लाह के रसूलों को जो मोअज्ज़ात दिये गये उन्हें भी आयतें कहा गया है। अम्बिया व रुसुल अल्लाह तआला की आयात यानि अल्लाह की निशानियाँ लेकर आये।

इस ऐतबार से मोअज्ज़ह का लफ़्ज़ जिस मायने में हम इस्तेमाल करते हैं, उस मायने में यह क़ुरआन मजीद में मुस्तमिल नहीं है। अलबत्ता वह तबीई क़वानीन (Physical Laws) जिनके मुताबिक़ यह दुनिया चल रही है, अगर किसी मौक़े पर वह टूट जायें और उनके टूट जाने से अल्लाह तआला की कोई मशियते ख़ुसूसी (special will) ज़ाहिर हो तो उसे ख़र्क़े आदत कहते हैं। मसलन क़ानून तो यह है कि पानी अपनी सतह हमवार रखता है, लेकिन हज़रत मूसा अलै० ने अपने असा (लाठी) की ज़र्ब (चोट) लगाई और समुन्दर

फट गया, यह ख़र्के आदत है, यानि जो आदी क़ानून है वह टूट गया। "ख़र्क़" फट जाने को कहते हैं, जैसे सूरह अल् कहफ़ में यह लफ्ज़ आया है "خَرَقَهَا" यानि उस अल्लाह के बन्दे ने जो हज़रत मूसा अलै० के साथ कश्ती में सवार थे, कश्ती में शग़ाफ़ (दरार) डाल दिया। पस (बस) जब भी कोई तबीई क़ानून टूटेगा तो वह ख़र्क़े आदत होगा। अल्लाह तआला इन ख़र्क़े आदत वाक़्यात के ज़रिये से बहुत से क़वानीने क़ुदरत को तोड़ कर अपनी ख़ुसूसी मशियत और ख़ुसूसी क़ुदरत का इज़हार फ़रमाता है। और यह बात हमारे हाँ मुसल्लम है कि इस ऐतबार से अल्लाह तआला का मामला सिर्फ़ अम्बिया के साथ मख़्सूस नहीं है, बल्कि अल्लाह तआला अपने नेक बंदों में से भी जिनके साथ ऐसा मामला करना चाहें करता है, लेकिन इस्तलाहन हम उन्हें करामात कहते हैं। ख़र्क़े आदत या करामात अपनी जगह पर एक मुस्तक़िल मज़मून है।

मोअज्ज़ह भी ख़र्क़े आदत होता है, लेकिन रसूल का मोअज्ज़ह वह होता है जो दावे के साथ पेश किया जाये और जिसमें तहदी (challenge) भी मौजूद हो। यानि जिसे रसूल ख़ुद अपनी रिसालत के सुबूत के तौर पर पेश करे और फिर उसमें मुक़ाबले का चैंलेज दिया जाये। जैसे हज़रत मूसा अलै० को अल्लाह तआला ने जो मोअज्ज़ात अता किये उनमें "يد بيضا" और "عصا" की हैसियत असल मोअज्ज़ेह की थी। वैसे आयतें और भी दी गई थीं जैसा कि सूरह बनी इस्राईल में है:

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسٰى تِسْعَ اٰيٰتٍۢ بَيِّنٰتٍ

"और बेशक हमने मूसा को नूर रोशन निशानियाँ दीं।" (आयत:101)

मगर यह उस वक़्त की बात है जब आप अलै० अभी मिस्र के अंदर थे। जब आप अलै० मिस्र से बाहर निकले तो असा की करामात ज़ाहिर हुईं कि उसकी ज़र्ब से समुन्दर फट गया, उसकी ज़र्ब से चट्टान से बारह चश्में फूट पड़े। यह तमाम चीज़ें ख़र्क़े आदत हैं, लेकिन असल मोअज्ज़ेह दो थे जिनको हज़रत मूसा अलै० ने दावे के साथ पेश किया कि यह मेरी रिसालत का सुबूत है।

जब आप अलै० फिरऔन के दरबार में पहुँचें और आपने अपनी रिसालत की दावत पेश की तो दलीले रिसालत के तौर पर फ़रमाया कि मैं इसके लिये सनद {سُلْطَانٌ مُّبِيْنٌ} भी लेकर आया हूँ। फिरऔन ने कहा कि लाओ पेश करो तो आप अलै० ने यह दो मोअज्ज़ेह पेश किये। यह दो मोअज्ज़ेह जो अल्लाह की तरफ़ से आप अलै० को अता किये गये, आप अलै० की रिसालत की सनद थे। इसमें तहदी भी थी। लिहाज़ा मुक़ाबला भी हुआ और जादूगरों ने पहचान भी लिया कि यह जादू नहीं है, मोअज्ज़ह है। मोअज्ज़ह जिस मैदान का होता है उसे उसी मैदान के अफ़राद ही पहचान सकते हैं। जब जादूगरों का हज़रत मूसा अलै० से मुक़ाबला हुआ तो आम देखने वालों ने तो यही समझा होगा कि यह बड़ा जादूगर है और यह छोटे जादूगर हैं, इसका जादू ज़्यादा ताक़तवर निकला, इसके असा ने भी साँप और अस्दहा की शक़्ल इख़्तियार की थी और इन जादूगरों की रस्सियों और छड़ियों ने भी साँपों की शक़्ल इख़्तियार कर ली थी, अलबत्ता यह ज़रूर है कि इसका बड़ा साँप बाक़ी तमाम साँपों को निगल गया। यही वजह है कि मजमा ईमान नहीं लाया, लेकिन जादूगर तो जानते थे कि उनके फ़न की रसाई कहाँ तक है, इसलिये उन पर यह हक़ीक़त मुन्कशिफ़ (प्रकट) हो गई कि यह जादू नहीं है, कुछ और है।

इसी तरह क़ुरान हकीम के मोअज्ज़ह होने का असल अहसास अरब के शायर, ख़तीबों और ज़बान दानों को हुआ था। आम आदी ने भी अगरचे महसूस किया कि यह ख़ास कलाम है, बहुत पुरतासीर और मीठा कलाम है, लेकिन इसका मोअज्ज़ह होना यानि आजिज़ कर देने वाला मामला तो इसी तरह साबित हुआ कि क़ुरआन मजीद में बार-बार चैलेंज़ दिया गया कि इस जैसा कलाम पेश करो। इस ऐतबार से जान लीजिये कि रसूल ﷺ का असल मोअज्ज़ह क़ुरआन है।

आप ﷺ के ख़र्क़े आदत मोअज्ज़ात तो बेशुमार हैं। शक़्क़ क़मर (चाँद के दो टुकड़े) क़ुरआन हकीम से साबित है, लेकिन यह आप ﷺ ने दावे के साथ नहीं दिखाया, ना ही इस पर किसी को चैलेंज किया, बल्कि आप ﷺ से मुतालबे (माँग) किये गये थे कि आप ﷺ यह-यह करके दिखाइये, उनमें से कोई बात अल्लाह तआला के यहाँ मन्ज़ूर नहीं हुई। अल्लाह चाहता तो उनका मुतालबा (माँग) पूरा करा देता, लेकिन उन मुतालबों को तस्लीम नहीं किया गया। अलबत्ता ख़र्क़े आदत वाक़्यात बेशुमार हैं। जानवरों का भी आप ﷺ की बात को समझना और आप ﷺ से अक़ीदत का इज़हार करना बहुत मशहूर है। हज्जतुल विदाह के मौक़े पर 63 ऊँटों को हुज़ूर ﷺ ने ख़ुद अपने हाथों से नहर (ज़िबह) किया था। क़तार में सौ ऊँट खड़े किये गये थे। रिवायात में आता है कि एक ऊँट जब गिरता था तो अगला ख़ुद आगे आ जाता था। इसी तरह "सतूने हनाना" का मामला हुआ। हुज़ूर ﷺ मस्जिद

नबवी ﷺ में खजूर के एक तने का सहारा लेकर खुत्बा इर्शाद फ़रमाया करते थे, मग़र जब इस मक़सद के लिये मिम्बर बना दिया गया और आप ﷺ पहली मर्तबा मिम्बर पर खड़े होकर ख़ुत्बा देने लगे तो उस सूखे हुए तने में से ऐसी आवाज़ आई जैसे कोई बच्चा बिलख़-बिलख़ कर रो रहा हो, इसी लिये तो उसे "हनाना" कहते हैं। ऐसे ही कई मौकों पर थोड़ा खाना बहुत से लोगों को किफ़ायत कर गया।

इन ख़र्क़े आदत वाक़यात को बाज़ अक़लियत पसंद (Rationalists) और साइंसी मिज़ाज के हामिल लोग तस्लीम नहीं करते। पिछले ज़माने में भी लोग इनका इन्कार करते थे। इस पर मौलाना रूम ने ख़ूब फ़रमाया है कि:

फ़ल्सफ़ी को मुन्कर हनाना अस्त
अज़ हवासे अम्बिया बेगाना अस्त!

बहरहाल ख़र्क़े आदत वाक़्यात हुज़ूर ﷺ की हयाते तैय्यबा में बहुत हैं। (तफ़सील देखना हो तो "सूरतुन नबी ﷺ" अज़ मौलाना शिबली की एक ज़ख़ीम जिल्द सिर्फ़ हुज़ूर ﷺ के ख़र्क़े आदत वाक़्यात पर मुश्तमिल है) लेकिन जैसा कि ऊपर ग़ुज़रा, मोअज्ज़ह दावे के साथ और रिसालत के सुबूत के तौर पर होता है।

क़ुरान मजीद में इसकी दूसरी मिसाल हज़रत ईसा अलै० की आई है कि आप अलै० लोगों से फ़रमाते हैं कि देखो मैं मुर्दों को ज़िन्दा करके दिखा रहा हूँ। मैं गारे से परिन्दे की सूरत बनाता हूँ और उसमें फूँक मारता हूँ तो वह अल्लाह के हुक्म से उड़ता हुआ परिन्दा बन जाता है। ख़र्क़े आदत का मामला तो ग़ैर नबी के लिये भी हो सकता है। अल्लाह तआला अपने नेक बन्दों के लिये भी इस तरह के हालात पैदा कर सकता है। उनका अल्लाह के यहाँ जो मक़ाम व मर्तबा है उसके इज़हार के लिये करामात का ज़हूर हो सकता है। यह चीज़ें बईद (असम्भव) नहीं हैं, लेकिन अम्बिया की करामात को अर्फ़े आम (आम तौर) में "मोअज्ज़ात" कहा जाता है और ग़ैर अम्बिया और औलिया के लिये "करामात" का लफ़्ज़ इस्तेमाल होता है। लेकिन मोअज्ज़ह वह है जिसे अल्लाह का रसूल दावे के साथ पेश करके और चैलेंज करे।

यह बात कि क़ुरआन मजीद ही हुज़ूर ﷺ का असल मोअज्ज़ह है, दो ऐतबारात से क़ुरआन में बयान की गई है। एक मुस्बत अंदाज़ है, जैसे सूरह यासीन में इब्तदाई आयतों में फ़रमाया:

يٰسٓ ۚ ﴿١﴾ وَالْقُرْاٰنِ الْحَكِيْمِ ۙ ﴿٢﴾ اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ۙ ﴿٣﴾

"यासीन! क़सम है क़ुरान हकीम की (और क़सम का असल फ़ायदा शहादत होता है, यानि गवाह है यह क़ुरान हाकिम) कि यक़ीनन (ऐ मुहम्मद ﷺ) आप अल्लाह के रसूल हैं।"

ख़िताब बज़ाहिर हुज़ूर ﷺ से है, हालाँकि हुज़ूर ﷺ को यह बताना मक़सूद नहीं है, बल्कि मुख़ातिबीन यानि अहले अरब और अहले मक्का को सुनाया जा रहा है कि यह क़ुरआन शाहिद है, यह सुबूत है, यह दलीले क़तई है कि मुहम्मद ﷺ अल्लाह के रसूल हैं, यह क़ुरआन पुकार-पुकार कर मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की रिसालत का सुबूत पेश कर रहा है।

इसके अलावा क़ुरान हकीम के चार मक़ामत और हैं जिनमें यही आयत मुक़द्दर है, अग़रचे बयान नहीं हुई। सूरह सुआद का आग़ाज़ होता है:

صٓ وَالْقُرْاٰنِ ذِی الذِّكْرِ ؕ ﴿١﴾ بَلِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فِيْ عِزَّةٍ وَّشِقَاقٍ ﴿٢﴾

"सुआद, क़सम है इस क़ुरान की जो नसीहत (याद दिहानी) वाला है। लेकिन वह लोग कि जो मुन्कर हैं, घमण्ड और ज़िद में पड़े हुए हैं।"

यहाँ "सुआद" एक हर्फ़ है, लेकिन इससे आयत नहीं बनी, जबकि "यासीन" एक आयत है। सूरह सुआद की पहली आयत क़सम पर मुश्तमिल है। "بَلْ" से जो दूसरी आयत शुरु हो रही है यह साबित कर रही है कि मुक़स्सम अलैह (जिस चीज़ पर क़सम खाई जा रही है) यहाँ महज़ूफ़ (लुप्त) है और वह {اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ} है। गोया कि मायनन इसे यूँ पढ़ा जायेगा:

{صٓ وَالْقُرْاٰنِ ذِی الذِّكْرِ ؕ ﴿١﴾ (اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ) بَلِ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا....}

इसी तरह सूरह क़ाफ़ में है:

{قٓ ۚ وَالْقُرْاٰنِ الْمَجِيْدِ ﴿١﴾ (اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ) بَلْ عَجِبُوْٓا اَنْ جَآءَهُمْ مُّنْذِرٌ مِّنْهُمْ....}

ऐसी ही दो सूरतें अल् ज़ुख़रफ़ और अल् दुख़ान "حٰمٓ" से शुरू होती हैं। इनकी पहली दो आयतें बिल्कुल एक जैसी हैं

حٰمٓ ۚ ﴿١﴾ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۙ ﴿٢﴾

पहली आयत हुरूफ़े मुक़त्आत पर और दूसरी आयत क़सम पर मुश्तमिल है। इसके बाद मुक़सम अलैए {اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ} महज़ूफ़ मानना पड़ेगा। गोया:

حٰمٓ ۚ﴿۱﴾ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۙ﴿۲﴾ (اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ) اِنَّا جَعَلْنٰهُ قُرْءٰنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿۳﴾
और:

حٰمٓ ۚ﴿۱﴾ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۙ﴿۲﴾ (اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ) اِنَّآ اَنْزَلْنٰهُ فِيْ لَيْلَةٍ مُّبٰرَكَةٍ اِنَّا كُنَّا مُنْذِرِيْنَ ﴿۳﴾

यह एक अस्लूब है कि मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की रिसालत को साबित करने के लिये क़ुरआन की क़सम खाई गई, यानि क़ुरआन की गवाही और शहादत पेश की गई। यह इस बात को कहने का एक अस्लूब है कि हुज़ूर ﷺ की रिसालत का असल सुबूत या आप ﷺ का असल मोअज्ज़ह क़ुरआन है।

क़ुरान का दावा और चैलेंज

पहले गुज़र चुका है कि मोअज्ज़ह मैं तहदी (चैलेंज) भी ज़रूरी है और दावा भी। लिहाज़ा वह मक़ामात गिन लीजिये जिनमें चैलेंज है कि अगर तुम्हारा यह ख़्याल है कि यह मुहम्मद ﷺ का कलाम है, इंसानी कलाम है जिसे मुहम्मद ﷺ ने खुद गढ़ लिया है, यह उनकी अपनी इख्तरा (खोज) है तो तुम मुक़ाबला करो और ऐसा ही कलाम पेश करो। क़ुरआन मजीद में ऐसे पाँच मक़ामात हैं। सूरह अत्तूर (आयत:33-34) में फ़रमाया:

اَمْ يَقُوْلُوْنَ تَقَوَّلَهٗ ۚ بَلْ لَّا يُؤْمِنُوْنَ ﴿۳۳﴾
فَلْيَاْتُوْا بِحَدِيْثٍ مِّثْلِهٖٓ اِنْ كَانُوْا صٰدِقِيْنَ ﴿۳۴﴾

"क्या उनका यह कहना है कि यह मुहम्मद ﷺ ने ख़ुद गढ़ लिया है? बल्कि हक़ीक़त यह है कि यह मानने को तैयार नहीं। फिर चाहिये कि वह इसी तरह का कोई कलाम पेश करें अगर वह सच्चे हैं।"

قَالَ,يَقُوْلُ का मायने है कहना। जबकि تَقَوَّلَ,يَتَقَوَّلُ का मफ़हूम है तकल्लुफ़ करके कहना, यानि मेहनत करके कलाम मौज़ूँ करना (जिसके लिये अँग्रेज़ी में composition का लफ़्ज़ है)। तो क्या उनका ख़्याल है कि यह मुहम्मद ﷺ ने ख़ुद कह लिया है? हक़ीक़त यह है कि यह मानने को तैयार नहीं, लिहाज़ा इस तरह की कट हुज्जतियाँ कर रहे हैं। अगर यह सच्चे हैं तो ऐसा ही कलाम पेश करें। आख़िर ये भी इंसान हैं, इनमें बड़े-बड़े शायर और बड़े क़दिरुल कलाम ख़तीब मौजूद हैं। इनमें वह शायर भी है जिनको दूसरे शायर सजदा करते हैं। ये सबके सब मिल कर ऐसा कलाम पेश करें। सूरह बनी इस्राईल (आयत:88) में फ़रमाया गया:

قُلْ لَّىِٕنِ اجْتَمَعَتِ الْاِنْسُ وَالْجِنُّ عَلٰٓى اَنْ يَّاْتُوْا بِمِثْلِ هٰذَا الْقُرْاٰنِ لَا يَاْتُوْنَ بِمِثْلِهٖ وَلَوْ كَانَ بَعْضُهُمْ لِبَعْضٍ ظَهِيْرًا ﴿۸۸﴾

"(ऐ नबी ﷺ! इनसे) कह दीजिये कि अगर तमाम जिन्न व इन्स जमा हो जायें (और अपनी पूरी क़ुव्वत व सलाहियत और अपनी तमाम ज़हानत व फ़तानत, क़ादिरुल कलामी को जमा करके कोशिश करें) कि इस क़ुरआन जैसी किताब पेश कर दें तो वह हरग़िज़ ऐसी किताब नहीं ला सकेगें चाहे वह एक-दूसरे कि कितनी ही मदद करें।"

यह तो बहैसियत-ए-मज्मुई पूरे क़ुरआन मजीद की नज़ीर पेश करने से मख़्लूक़ के आजिज़ होने का दावा है जो क़ुरआन मजीद ने दो मक़ामात पर किया है। सूरह युनुस में इससे ज़रा नीचे उतर कर, जिसे बर सबीले तनज्ज़ुल कहा जाता है, फ़रमाया कि पूरे क़ुरआन की नज़ीर नहीं ला सकते तो ऐसी दस सूरतें ही गढ़ कर ले आओ! इर्शाद हुआ: (सूरह हूद, आयत:13)

اَمْ يَقُوْلُوْنَ افْتَرٰىهُ ۭ قُلْ فَاْتُوْا بِعَشْرِ سُوَرٍ مِّثْلِهٖ مُفْتَرَيٰتٍ وَّادْعُوْا مَنِ اسْتَطَعْتُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿۱۳﴾

"क्या यह कहते हैं कि यह क़ुरआन ख़ुद गढ़ कर ले आया है? (ऐ नबी ﷺ! इनसे) कहिये पस तुम भी दस सूरतें बना कर ले आओ ऐसी ही गढ़ी हुई और बुला लो जिसको बुला सको अल्लाह के सिवा अगर तुम सच्चे हो।"

इसके बाद दस से नीचे उतर कर एक सूरत का भी चैलेंज दिया गया: (सूरह युनुस, आयत:38)

اَمْ يَقُوْلُوْنَ افْتَرٰىهُ ۭ قُلْ فَاْتُوْا بِسُوْرَةٍ مِّثْلِهٖ وَادْعُوْا مَنِ اسْتَطَعْتُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿۳۸﴾

"क्या यह कहते हैं कि यह क़ुरान ख़ुद बना कर ले आया है? (ऐ नबी ﷺ! इनसे) कहिये पस तुम भी एक सूरत बना कर ले आओ ऐसी ही और बुला लो जिसको बुला सको अल्लाह के सिवा अगर तुम सच्चे हो।"

यह चारों मक़ामात तो मक्की सूरतों में हैं। पहली मदनी सूरत " अल् बक़रह" है। इसमें बड़े अहतमाम के साथ यह बात कही गई है:

وَاِنْ كُنْتُمْ فِيْ رَيْبٍ مِّمَّا نَزَّلْنَا عَلٰي عَبْدِنَا فَاْتُوْا بِسُوْرَةٍ مِّنْ مِّثْلِهٖ ۠ وَادْعُوْا شُهَدَاۗءَكُمْ مِّنْ

"अगर तुम लोगों को शक है इस कलाम के बारे में जो हमने अपने बन्दे पर नाज़िल किया है (कि यह अल्लाह का कलाम नहीं है) तो इस

دُوْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿٢٣﴾ فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا وَلَنْ تَفْعَلُوْا فَاتَّقُوا النَّارَ الَّتِيْ وَقُوْدُهَا النَّاسُ وَالْحِجَارَةُ ۚ اُعِدَّتْ لِلْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٤﴾

जैसी एक सूरत तुम भी (मौज़ूं करके) ले आओ और अपने तमाम मददगारों को बुला लो (उन सबको जमा कर लो) अल्लाह के सिवा अगर तुम सच्चे हो। और अगर तुम ऐसा ना कर सको, और तुम हरगिज़ ऐसा ना कर सकोगे, तो बचो उस आग से जिसका ईंधन आदमी और पत्थर होंगे, यह मुन्करों के लिये तैयार की गयी है।"

यहाँ यह वाज़ेह किया जा रहा है कि हक़ीक़त में तुम सच्चे नहीं हो, तुम्हारा दिल गवाही दे रहा है कि यह इंसानी कलाम नहीं है, लेकिन चूँकि तुम ज़बान से तन्क़ीद (आलोचना) कर रहे हो और झुठला रहे हो तो अगर वाक़िअतन तुम्हें शक है तो इस शक को रफ़ा (अस्वीकृत) करने के लिये हमारा यह चैलेंज़ मौजूद है।

यह हैं क़ुरआन मजीद के मोअज्ज़ह होने के दो अस्लूब। एक मुस्बत (positive) अंदाज़ है कि क़ुरआन गवाह है इस पर कि ऐ मुहम्मद! (ﷺ) आप अल्लाह के रसूल हैं, और दूसरा अंदाज़ चैलेंज का है कि अगर तुम्हें इसके कलामे इलाही होने में शक है तो इस जैसा कलाम तुम भी बना कर ले आओ।

क़ुरआन किस-किस ऐतबार से मोअज्ज़ह है?

अब इस ज़िमन में तीसरी ज़ेली (उप) बहस यह होगी कि क़ुरआन मजीद किस-किस ऐतबार से मोअज्ज़ह है। यह मज़मून इतना वसीअ और इतना मुतनव्वा अल् ऐतराफ़ है कि "وجوہ اعجاز القرآن" पर पूरी-पूरी किताबें लिखी गई हैं। ज़ाहिर बात है इस वक़्त इसका इहाता मक़सूद नहीं है, सिर्फ़ मोटी-मोटी बातें ज़िक्र की जाती हैं।

असल शय तो इसकी तासीरे क़ल्ब है कि यह दिल को लगने वाली बात है। इसका असल ऐजाज़ यही है कि यह दिल को जाकर लगती है बशर्ते कि पढ़ने वाले के अंदर तास्सुब, ज़िद्द और हठधर्मी ना हो और उसे ज़बान से इतनी वाक़िफ़यत हो जाए कि बराहेरास्त क़ुरआन उसके दिल पर उतर सके। यह क़ुरआन के ऐजाज़ का असल पहलु है। लेकिन इज़ाफ़ी तौर पर जान लीजिए कि जिस वक़्त क़ुरआन नाज़िल हुआ उस वक़्त के ऐतबार से इसके मोअज्ज़ह होने का नुमाया और अहमतर पहलु इसकी अदबियत, इसकी फ़साहत व बलाग़त, इसके अल्फ़ाज़ का इन्तखाब, बंदिशें और तरकीबें, इसकी मिठास और इसकी सौती आहंग है। यह दरहक़ीक़त नुज़ूल के वक़्त क़ुरआन के मोअज्ज़ह होने का सबसे नुमाया पहलु है।

यहाँ यह बात पेशे नज़र रहे कि हर रसूल को उसी तर्ज़ का मोअज्ज़ह दिया गया जिन चीज़ों का उसके ज़माने में सबसे ज़्यादा चर्चा और शग़ुफ़ था। हज़रत मूसा अलै० के ज़माने में जादू आम था लिहाज़ा मुक़ाबले के लिये आप अलै० को वह चीज़ें दी गईं जिनसे आप अलै० जादूगरों को शिकस्त दे सकें। हुज़ूर ﷺ ने जिस क़ौम में अपनी दावत का आग़ाज़ किया उस क़ौम का असल ज़ौक कुदरते कलाम था। वह कहते थे कि असल में बोलने वाले तो हम ही हैं, बाकी दुनिया तो गूँगी है। उनकी ज़बानदानी का यह आलम था कि वह अपनी पसंद की अशयाअ (चोज़ों) के नाम रखना शुरू करते तो हज़ारो नाम रख देते। चुनाँचे अरबी में शेर और तलवार के लिये पाँच-पाँच हज़ार अल्फ़ाज़ हैं। घोड़े और ऊँट के लिये ला-तादाद अल्फ़ाज़ हैं। यह उनकी क़ादिरुल कलामी है कि किसी शय को उसकी हर अदा के ऐतबार से नया नाम दे देते। घोड़ा उनकी बड़ी महबूब शय है, लिहाज़ा उसके नामालूम कितने नाम हैं। शेरो-शायरी में उनके ज़ौक़ व शौक़ का यह आलम था कि उनके यहाँ सालाना मुक़ाबले होते थे ताकि उस साल के सबसे बड़े शायर का तअय्युन किया जाये। शायर अपने-अपने क़सीदे लिख कर लाते थे, मुक़ाबला होता था। फिर जब फ़ैसला होता था कि किसका क़सीदा सब पर बाज़ी ले गया है तो बाक़ी तमाम शायर उसकी अज़मत के ऐतराफ़ के तौर पर उसको सजदा करते थे। फिर वह क़सीदा ख़ाना काबा की दीवार पर लटका दिया जाता था कि यह है इस साल का क़सीदा। चुनाँचे इस तरह के सात क़सीदे ख़ाना काबा में आवेज़ा (प्रदर्शित) किये गए थे जिन्हें "سَبْعَۃ مُعَلَّقَۃ" कहा जाता था। "سبعۃٌ مُعلّقۃ" के आख़िरी शायर हज़रत लबीद (रज़ि०) थे जो ईमान ले आए। ईमान लाने के बाद उन्होंने शेर कहने छोड़ दिये। हज़रत उमर (रज़ि०) ने उनसे कहा कि ऐ लबीद! अब आप शेर क्यों नहीं कहते? तो जवाब में उन्होंने बड़ा प्यारा जुमला कहा कि "اَبَعْدَ الْقُرآنِ؟" यानि क्या क़ुरआन के नुज़ूल के बाद भी? अब किसी के लिये कुछ कहने का मौक़ा बाक़ी है? क़ुरआन के आ जाने के बाद कोई अपनी फ़साहत व बलाग़त के इज़हार की कोशिश कर सकता है? गोया ज़बाने बंद

हो गईं, उन पर ताले पड़ गये, मालिकुल शौरा (शायरों के राजा) ने शेर कहने छोड़ दिये।

जिन लोगों की मादरी ज़बान अरबी है वह आज भी क़ुरआन के इस ऐजाज़ को महसूस कर सकते हैं। ग़ैर अरब लोगों के लिये इसको महसूस करना मुमकिन नहीं है। अगर कोई अपनी मेहनत से अरबी अदब के अंदर मौलाना अली मियाँ(1) की सी महारत हासिल कर ले तो वह वाक़िअतन इसको महसूस कर सकेगा और इसकी तहसीन कर सकेगा कि फ़साहत व बलाग़त में क़ुरआन का क्या मक़ाम है। हम जैसे लोगों के लिये यह मुमकिन नहीं है, अलबत्ता इसका सौती आहंग हम महसूस कर सकते हैं। वाक़्या यह है कि क़ुरआन की क़िरात के अंदर एक मोअज्ज़ाना तासीर है जो क़ल्ब के अंदर अजीब कैफ़ियात पैदा कर देती है। क़ुरआन का सौती आहंग हमारी फ़ितरत के तारों को छेड़ता है। क़ुरआन की यह मोअज्ज़ाना तासीर आज भी वैसी है जैसी नुज़ूले क़ुरआन के वक़्त थी। इसमें मरवरे अय्याम (दिन गुज़रने) से कोई फ़र्क वाक़ेअ नहीं हुआ।

क़ुरआन की फ़साहत व बलाग़त, इसकी अदबियत, अज़ूबत और इसके सौती आहंग की मोअज्ज़ाना तासीर पर मुस्तज़ाद (top) अहदे हाज़िर में क़ुरआन के ऐजाज़ के ज़िमन में जो चीज़ें बहुत नुमाया होकर सामने आती हैं उनमें से एक चीज़ तो वह है जिसका क़ुरआन मजीद ने बड़े सरीह अल्फ़ाज़ (हा मीम अस्सज्दा:53) में ज़िक्र किया है:

سَنُرِيهِمْ ءَايَٰتِنَا فِى ٱلْءَافَاقِ وَفِىٓ أَنفُسِهِمْ حَتَّىٰ يَتَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُ ٱلْحَقُّ

“हम अनक़रीब उन्हें अपनी आयतें दिखाएँगे आफ़ाक़ में भी और उनकी अपनी जानों में भी यहाँ तक कि यह बात उन पर वाज़ेह हो जाएगी कि यह क़ुरआन हक़ है।”

इस आयत मुबारका में इल्मे इंसानी के दायरे में साइंस और टेक्नोलॉजी की तरक्क़ी और जदीद इकतशाफ़ात (खोज) व इन्कशाफ़ात (खुलासे) की तरफ़ इशारा है। यह आयाते आफ़ाक़ी हैं। फ्राँसीसी सर्जन डॉक्टर मौरिस बकाई का पहले भी हवाला दिया जा चुका है कि क़ुरआन का मुताअला करने के बाद उसने कहा कि मेरा दिल इस पर मुत्मईन हो गया है कि इस क़ुरआन में कोई बात ऐसी नहीं है जिसे साइंस ने ग़लत साबित किया हो। अलबत्ता उस दौर में जबकि इंसान का अपना ज़हनी ज़र्फ़ वसीअ नहीं हुआ था, ऊलूमे इंसानी और मालूमाते इंसानी का दायरा महदूद था, उस वक़्त साइंसी इशारात की हामिल आयाते क़ुरानिया का क्या मफ़हूम समझा गया, वह बात और है। कलामुल्लाह होने के ऐतबार से असल अहमियत तो क़ुरआन के अल्फ़ाज़ को हासिल है। डॉक्टर मौरिस बकाई ने क़ुरआन का तौरात के साथ तक़ाबुल (मुक़ाबला) किया है! तौरात से मुराद Old Testament है। इंजीले अरबिया जो हज़रत ईसा अलै० की तरफ़ मन्सूब है, उनमें तो कई चीज़ें ऐसी हैं जो ग़लत साबित हो चुकी हैं। इंजील में ज़्यादातर अख़्लाक़ी मुवाअज़ (उपदेश) हैं या फिर हज़रत ईसा अलै० के स्वान्हे हयात (जीवनी) हैं। तौरात में यह मुबाहिस मौजूद हैं कि कायनात कैसे पैदा हुई, अल्लाह ने कैसे इसे बनाया। मुख़्तलिफ़ साइंसी phenomena उसमें मौजूद हैं।

आपको मालूम है कि फ़िज़िक्स में आज सबसे ज़्यादा अहम मौज़ू जिस पर तहक़ीक़ हो रही है, यही है कि कायनात कैसे वजूद में आई, इब्तदाई हालात क्या थे और बाद अज़ा (बाद में) उनमें क्या तब्दीलियाँ हुईं। डाक्टर मौरिस बकाई ने इस ऐतबार से महसूस किया कि तौरात में तो ऐसी चीजें हैं जो ग़लत साबित हो चुकी हैं। इसलिये कि असल तौरात तो छठी सदी क़ब्ले मसीह ही में गुम हो गई थी। बख़्त नसर के हमले में येरुशलम को तहस-नहस कर दिया गया और हैकले सुलेमानी की ईंट से ईंट बजा दी गई, उसकी बुनियादें तक खोद डाली गईं और येरुशलम के बसने वाले छः लाख की तादाद में क़त्ल कर दिये गए जबकि बख़्त नसर छः लाख को क़ैदी बना कर भेड़-बकरियों की तरह हाँकते हुए अपने हमराह बाबुल (ईराक़) ले गया। चुनाँचे येरुशलम में एक मुतनफ्फिस (जीव) भी बाक़ी नहीं रहा। आप अंदाज़ा करें, अगर यह आदादो और शुमार (आंकड़े) सही हैं तो हज़रत मसीह अलै० से भी छः सौ साल क़ब्ल यानि आज से 2600 बरस क़ब्ल येरुशलम बारह लाख की आबादी का शहर था और उस शहर पर क्या क़यामत गुज़री होगी! इसके बाद से वह असल तौरात दुनिया में नहीं है। मूसा अलै० को जो अहकामे अशरह (Ten Commandments) दिये गये थे वह पत्थर की तख़्तियों पर लिखे हुए थे। यह तख़्तियाँ भी लापता हो गईं और बाक़ी तौरात का वजूद भी बाक़ी ना रहा। क़ुरआन हकीम में “صُحُفِ اِبْرٰهِيْمَ وَ مُوْسٰى” का ज़िक्र है। मूसा अलै० के सहीफ़े पाँच है जो अहद नामा-ए-क़दीम (Old Testament) की पहली पाँच किताबे हैं। सानेहा येरुशलम (Tragedy of Jerusalem) के तक़रीबन डेढ़ सौ बरस बाद लोगों ने तौरात को अपनी याददाश्तों से मुरत्तब

किया। चुनाँचे उस वक़्त की नौए इंसानी की ज़हनी और इल्मी सतह जो थी वो इस पर लाज़िमी तौर पर असर अंदाज़ हुई।

डॉक्टर मौरिस बकाई के अलावा मैं डाक्टर कीथल मूर का हवाला भी दे चुका हूँ कि वह क़ुरआन हकीम में इल्मे जनीन (भ्रूणविज्ञान) से मुताल्लिक़ इशारात पाकर किस क़दर हैरान हुआ कि यह मालूमात चौदह सौ बरस पहले कहाँ से आ गईं! फ़िज़िकल साइंस के मुख़्तलिफ़ फ़ील्ड्स हैं, उनमें जैसे-जैसे इल्मे इंसानी तरक़्क़ी करता जायेगा यह बात मज़ीद मुबरहन (स्पष्ट) होती चली जायेगी कि यह कलामे हक़ है और यह कलाम मज़ाहिर तबीई (भौतिक घटनाओं) के ऐतबार से भी हक़ साबित हो रहा है। यह एक वाज़ेह सुबूत है कि यह क़ुरआन अल्लाह का कलाम है और मुहम्मद ﷺ अल्लाह के रसूल हैं।

अहदे हाज़िर के ऐतबार से क़ुरआन हकीम के ऐजाज़ का दूसरा अहमतर पहलु इसकी हिदायते अमली है। इसमें इन्फ़रादी (व्यक्तिगत) ज़िन्दगी से मुताल्लिक़ भी मुकम्मल हिदायतें हैं और इंसानी अख़्लाक़ व किरदार और इंसान के रवैये में भी पूरी तफ्सीलात मौजूद हैं। इन्फ़रादी ज़िन्दगी से मुताल्लिक़ यह तमाम चीज़ें साबक़ा अम्बिया की तालीमात में भी मौजूद हैं। यह अख़्लाक़ी इक़दार (moral values) वैसे भी फ़ितरते इंसानी के अंदर मौजूद हैं। क़ुरआन का अपना कहना है: {فَاَلۡهَمَهَا فُجُوۡرَهَا وَتَقۡوٰىهَا} (अश्शम्स:8) यानि नफ़्से इंसानी को इलहामी तौर पर यह मालूम है कि फ़ुजूर (अनैतिकता) क्या हैं और तक़वा (नैतिकता) क्या है। परहेज़गारी किसे कहते हैं और बद्कारी किसे कहते हैं। अलबत्ता क़ुरआन हकीम का ऐजाज़ यह है कि इसमें अद्ल व क़िस्त (न्याय) पर मब्नी (आधारित) इज्तमाई निज़ाम दिया गया है जिसमें इन्तहाई तवाज़ुन (संतुलन) रखा गया है।

इंसान ग़ौर करे तो मालूम होगा कि नौए इंसानी को तीन बड़े-बड़े उक़द हाए ला यन्हल (dilemmas) दरपेश हैं जो तवाज़ुन (संतुलन) के मत्क़ाज़ी (अपेक्षित) हैं और इनमें अदमे तवाज़ुन (असंतुलन) से इंसानी तमद्दुन (सभ्यता) फ़साद और बिगाड़ का शिकार है। इसमें पहला उक़दा-ए-ला यन्हल यह है कि मर्द और औरत के हुक़ूक़ व फ़राइज़ में क्या तवाज़ुन है? दूसरा यह कि सरमाया और मेहनत के माबैन (बीच) क्या तवाज़ुन है? फिर तीसरा यह कि फ़र्द और रियासत या फ़र्द और इज्तमाइयत के माबैन हुक़ूक़ व फ़राइज़ के ऐतबार से क्या तवाज़ुन है? इन तीनों मामलात में तवाज़ुन क़ायम करना इन्तहाई मुश्किल है। अगर फ़र्द को ज़रा ज़्यादा आज़ादी दे दी जाती है तो अनारकी (chaos) फ़ैलती है। आज़ादी के नाम पर दुनिया में क्या कुछ हो रहा है! दूसरी तरफ़ अगर फ़र्द की आज़ादी पर क़दग़नें (controls) और बंदिशें लगा दी जाएें तो वह रद्दे अमल होता है जो कम्युनिज़्म के ख़िलाफ़ हुआ। फ़ितरते इंसानी और तबीयते इंसानी ने यह क़द्ग़नें क़ुबूल नहीं कीं और इनके ख़िलाफ़ बग़ावत की।

औरत और मर्द के हुक़ूक़ के माबैन तवाज़ुन का मामला भी इन्तहाई हस्सास (संवेदनशील) है। इस मीज़ान का पलड़ा अगर ज़रा सा मर्द की जानिब झुका दिया जाये तो औरत की कोई हैसियत नहीं रहती, वह बिल्कुल भेड़-बकरी की तरह मर्द की मिल्कियत बन कर रह जाती है, उसका कोई तशख्खुस (पहचान) नहीं रहता और वह मर्द की जूती की नोक क़रार पाती है। लेकिन अगर दूसरा पलड़ा ज़रा झुका दिया जाये तो औरत को जो हैसियत मिल जाती है वह क़ौमों की क़िस्मतों के लिये तबाहकुन साबित होती है। इससे ख़ानदानी इदारा ख़त्म हो जाता है और घर के अंदर का चैन और सुकून बर्बाद होकर रह जाता है। इसकी सबसे बड़ी मिसाल सेकेण्ड यूनियन मुमालिक हैं। मआशी और इक़्तसादी (economic) ऐतबार से यह कहा जा सकता है कि रूऐ अरज़ी (ज़मीन) पर अगर जन्नत देखनी हो तो इन मुल्कों को देख लिया जाये। वहाँ के शहरियों की बुनियादी ज़रूरतें किस उम्दगी के साथ पूरी हो रही है! वहाँ इलाज और तालीम की सहुलियतें सबके लिये यकसा (बराबर) हैं और इस ज़िमन में ख़ैरात (charity) पर पलने वालों और टेक्स अदा करने वालों के माबैन कोई फ़र्क़ व तफ़ावत (असमानता) नहीं है। लेकिन इन मुल्कों में मर्द और औरत के हुक़ूक़ के माबैन तवाज़ुन बरक़रार नहीं रखा गया जिसके नतीजे में ख़ानदान का इदारा मज़्महल (उलट) हुआ, बल्कि टूट-फूट कर ख़त्म हो गया और घर का सुकून नापीद (विलुप्त) हो गया। चुनाँचे आज ख़ुदकुशी की सबसे ज़्यादा शरह (अनुपात) स्वीडन में है। इसलिये कि घर का सुकून ख़त्म हो जाने के बाअस (कारण) आसाब (nerves) पर शदीद तनाव है।

अल्लाह का शुक्र है कि हमारे यहाँ ख़ानदान का इदारा बरक़रार है। अगरचे यहाँ भी नाम-निहाद तौर पर बहुत ऊँची सतह के लोगों के यहाँ तो वह सूरतें पैदा हो गईं हैं, ताहम मज्मुई तौर पर हमारे यहाँ ख़ानदान का

इदारा अभी काफ़ी हद तक महफ़ूज़ है। इस ज़िमन में क़ुरआन मजीद में लफ़्ज़ "سکون" इस्तेमाल हुआ है। सूरतुल रूम की आयत 21 मुलाहिज़ा हो:

وَمِنْ اٰيٰتِهٖٓ اَنْ خَلَقَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا لِّتَسْكُنُوْٓا اِلَيْهَا وَجَعَلَ بَيْنَكُمْ مَّوَدَّةً وَّرَحْمَةً

"और उसकी निशानियों में से यह है कि उसने तुम्हारे लिये तुम्हारी ही नौअ (जाति) से जोड़े बनाये, ताकि तुम उनके पास सुकून हासिल करो और तुम्हारे दरमियान मुहब्बत और रहमत पैदा कर दी।"

अगर इंसान को यह सुकून नहीं मिलता तो अगरचे उसकी खाने-पीने की ज़रूरतें, जिन्सी तस्कीन (यौन सन्तुष्टि) और दूसरी ज़रूरयाते ज़िन्दगी खूब पूरी हो रही हों लेकिन ज़िन्दगी इंसान के लिये जहन्नम बन जाएगी।

मज़कूरा बाला तीन उक़द हाए ला-यन्हल में से मआशियात का मसला सबसे मुश्किल है। सरमाये को ज़्यादा खल-खेलने का मौका देंगे तो सूरते हाल एक इन्तहा को पहुँच जायेगी और मज़दूर का बद्तरीन इस्तेहसाल (शोषण) होगा, जबकि मज़दूर को ज़्यादा हुक़ूक़ दे देंगे तो सरमाए को कोई तहफ़्फ़ुज़ हासिल नहीं रहेगा। अगर नेशनलाईज़ेशन हो जाये तो लोगों में काम करने का जज़्बा ही नहीं रहता। आपको मालूम है कि हमारे यहाँ नेशनलाईज़ेशन के बाद क्या हुआ! रूस की इक़्तसादी मौत की अहम वजह यही नेशनलाईज़ेशन थी। तो अब सरमाए और मेहनत में तवाज़ुन के लिये क्या शक़्ल इख़्तियार की जाये? यह है दरहक़ीक़त अहदे हाज़िर में क़ुरआन की हिदायत का अहमतरीन हिस्सा! आज इस पर भरपूर तवज्जह मरकूज़ करने की ज़रूरत है। फ़िज़िकल साइंस से क़ुरआन की हक़्क़ानियत के सुबूत ख़ुद-ब-ख़ुद मिलते चले जायेंगे। जैसे-जैसे साइंस तरक़्क़ी कर रही है नए-नए गोशे सामने आ रहे हैं और इनसे साबित हो रहा है कि यह क़ुरआन हक़ है। लेकिन आज ज़रूरत इस अम्र की है कि क़ुरआन हकीम ने अमरानियाते इंसानिया और इज्तमाइयात मसलन इक़्तसादयात, सियासियात और समाजियात के ज़िमन में जो अदले इज्तमाई दिया है उसके मुबरहन किया जाये। अल्लामा इक़बाल के यह दो शेर इसी हक़ीक़त की निशानदेही कर रहे हैं:

हर कुजा बीनी जहाने रंग व बू
आँ कि अज़ ख़ाकिश बरवीद आरज़ू!
या ज़ नूर मुस्तफ़ा ﷺ ऊ रा बहास्त
या हनूज़ अंदर तलाशे मुस्तफ़ा ﷺ अस्त!

यानि दुनिया में जो सोशल इंक़लाब आया है उसकी सारी चमक-दमक और रोशनी या तो नूरे मुस्तफ़ा ﷺ ही से मुस्तआर (उधार ली गई) और माख़ूज़ (प्राप्त) है या फिर इंसान चार व नाचार हुज़ूर ﷺ के लाये हुए निज़ाम ही की तरफ़ बढ़ रहा है। वह दायें-बायें की ठोकरें और अफ़रात व तफ़रीत (ऊँच-नीच) के धक्के खाकर लड़खड़ाता हुआ चार व नाचार उसी मंज़िल की तरफ़ जा रहा है जहाँ मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और क़ुरआन हकीम ने उसे पहुँचाया था।

अहदे हाज़िर में ऐजाज़े क़ुरान का मज़हर: अल्लामा इक़बाल

वुजूह ऐजाज़े क़ुरआन के ज़िमन में एक अहम बात अर्ज़ कर रहा हूँ कि मेरे नज़दीक अहदे हाज़िर में क़ुरआन के ऐजाज़ का सबसे बड़ा मज़हर अल्लामा इक़बाल की शख़्सियत है। मैंने अर्ज़ किया था कि क़ुरआन हकीम ज़मान (समय) व मकान (जगह) के एक ख़ास तनाज़ुर (दृष्टिकोण) में आज से चौदह बरस क़ब्ल नाज़िल हुआ था। इसके अव्वलीन मुख़ातिब अरब के उजड्ड, देहाती, बद्दू और ना-ख़्वान्दा (अशिक्षित) लोग थे जिन्हें क़ुरआन ने "उम्मिय्यीन" और "قَوْمًا لُّدًّا" क़रार दिया है। लेकिन इस क़ुरआन ने उनके अंदर बिजली दौड़ा दी। उनके ज़हन, क़ल्ब और रूह को मुतास्सिर किया, फिर उनमें वलवला पैदा किया, उनके बातिन को मुनव्वर किया। उनकी शख़्सियतों में इंक़लाब आया और अफ़राद बदल गये। फिर उन्होंने ऐसी क़ुव्वत की हैसियत इख़्तियार की कि जिसने दुनिया को एक नया तमद्दुन, नयी तहज़ीब और नये क़वानीन देकर एक नये दौर का आग़ाज़ किया। लेकिन बीसवीं सदी में अल्लामा इक़बाल जैसा एक शख़्स जिसने वक़्त की आला तरीन सतह पर इल्म हासिल किया, जिसने मशरिक़ व मग़रिब के फ़लसफ़े पढ़ लिये, जो क़दीम और जदीद दोनों का जामेअ था, जो जर्मनी और इंग्लिसतान में जाकर फ़लसफ़े पढ़ता रहा, उसको इस क़ुरआन ने इस तरह possess किया और उस पर इस तरह अपनी छाप क़ायम की कि उसके ज़हन को सुकून मिलता तो सिर्फ़ क़ुरआन हकीम से और उसकी तिशनगी-ए-इल्म (इल्म की प्यास) को आसूदगी (चैन) हासिल हो सकी तो सिर्फ़ किताबुल्लाह से। गोया बक़ौल ख़ुद उनके:

ना कहीं जहाँ में अमाँ मिली, जो अमाँ मिली तो कहाँ मिली
मेरे जुर्मे ख़ाना ख़राब को तेरे अफ़्-ए-बंदा नवाज़ में!

मेरा एक किताबचा "अल्लामा इक़बाल और हम" एक अरसे से शाया होता है। यह मेरी एक तक़रीर है जो मैंने एचिसन कॉलेज में 1973 ईसवी में की थी। इसमें मैंने अल्लामा इक़बाल के लिये चंद इस्तलाहात इस्तेमाल की हैं। "इक़बाल और क़ुरान" के उन्वान से मैंने अल्लामा इक़बाल को (1) अज़्मते क़ुरआन का निशान, (2) वाक़िफ़े मर्तबा व मक़ामे क़ुरआन, और (3) दाई इलल क़ुरआन के ख़िताबात दिये हैं। मैं अल्लामा इक़बाल को इस दौर का सबसे बड़ा तर्जुमानुल क़ुरआन समझता हूँ। क़ुरआन मजीद के उलूम व मआरफ़ (Studies & Teachings) की जो ताबीर अल्लामा इक़बाल ने की है इस दौर में कोई दूसरी शख़्सियत इसके आस-पास भी नहीं पहुँची। उनसे लोगो ने चीज़ें मुस्तआर (उधार) ली हैं और फिर उनको बड़े पैमाने पर फैलाया है। उन हज़रात की यह ख़िदमत अपनी जगह क़ाबिले क़द्र है, लेकिन फ़िक्री ऐतबार से वह तमाम चीजें अल्लामा इक़बाल के ज़हन की पैदावार हैं।

मज़कूरा बाला किताबचे में मैंने मौलाना अमीन अहसन इस्लाही साहब की गवाही भी शाया की है। कई साल पहले का वाक़्या है कि मौलाना आँखों के ऑपरेशन के लिये ख़ानक़ा डोगरां से लाहौर आये हुए थे और ऑपरेशन में किसी वजह से ताख़ीर हो रही थी। घर से बाहर होने की वजह से उनके लिखने-पढ़ने का सिलसिला मौअत्तल (delay) हो गया। ताहम फ़ुरसत के उन अय्याम में मौलाना ने अल्लामा इक़बाल का पूरा उर्दू और फ़ारसी कलाम दोबारा पढ़ लिया। इसके बाद उन्होंने उसके बारे में मुझसे दो तास्सुर (impression) बयान किये। मौलाना का पहला तास्सुर तो यह था कि "क़ुरआन हकीम के बाज़ मक़ामात के बारे में मुझे कुछ मान सा था कि मैंने उनकी ताबीर जिस अस्लूब से की है शायद कोई और ना कर सके। लेकिन अल्लामा इक़बाल के कलाम के मुताअले से मालूम हुआ कि वह उनकी ताबीर मुझसे बहुत पहले और मुझसे बहुत बेहतर कर चुके हैं!" मौलाना इस्लाही साहब का दूसरा तास्सुर यह था कि "इक़बाल का कलाम पढ़ने के बाद मेरा दिल बैठ सा गया है कि अग़र ऐसा हदी ख़्वाँ (extent reader) इस उम्मत में पैदा हुआ, लेकिन यह उम्मत टस से मस ना हुई तो हमा-शमा (forgive us) के करने से क्या होगा!" जो क़ौम अल्लामा इक़बाल से हरकत में नहीं आई उसे कौन हरकत में ला सकेगा।

वाक़्या यह है कि मेरे नज़दीक इस दौर का सबसे बड़ा तर्जुमानुल क़ुरआन और सबसे बड़ा दाई इलल क़ुरआन अल्लामा इक़बाल है। इसलिये की क़ुरआन मजीद की अज़्मत का जिस गैराई (विस्तार) और गहराई के साथ अहसास अल्लामा इक़बाल को हुआ है मेरी मालूमात की हद तक (अग़रचे मेरी मालूमात महदूद है) इस दर्जे क़ुरआन की अज़्मत का इन्कशाफ़ (खोज) किसी और इंसान पर नहीं हुआ। जब वह क़ुरआन मजीद की अज़्मत बयान करते हैं तो ऐसा महसूस होता है कि यह उनकी दीद और उनका तजुर्बा है, क्योंकि जिस अंदाज़ से वह बात बयान करते हैं वह तकल्लुफ़ और आवर्द (अवतरण) से मावरा (बढ़ कर) अंदाज़ होता है। मुलाहिज़ा कीजिये कि अल्लामा इक़बाल क़ुरआन मजीद के बारे में क्या कहते हैं:

आँ किताबे ज़िन्दा क़ुरआने हकीम
हिकमत ऊ ला यज़ाल अस्त व क़दीम
नुस्ख़ा इसरारे तकवीन हयात
बे सबात अज़ कौतश गीरद सबात
हर्फ़े ऊ रा रैब ने, तब्दील ने
आया इश शर्मिंदा-ए-तावील ने
फाश गोयम आँच दर दिल मुज़मर अस्त
ईं किताबे नीस्त चीज़ें दीगर अस्त
मिस्ल हक़ पिन्हाँ व हम पैदा सत ईं
जिन्दा व पाइन्दा व गोया अस्त ईं
चूँ बजाँ दर रफ़्त जाँ जो दीगर शूद
जाँ चू दीगर शद जहाँ दीगर शूद!

"वह ज़िन्दा किताब, क़ुरआन हकीम, जिसकी हिकमत लाज़वाल भी है और क़दीम भी!
ज़िन्दगी के वजूद में आने ख़ज़ाना, जिसकी हयात अफ़रोज़ और क़ुव्वत बख़्श तासीर से बेसबात भी सबात व दवाम हासिल कर सकते हैं।
इसके अल्फ़ाज़ में ना किसी शक व शुबह का शाइबा है ना रद्दो बदल की गुंजाईश। और इसकी आयतें किसी तावील की मोहताज़ नहीं।

(इस किताब के बारे में) जो बात मेरे दिल में पोशीदा है उसे ऐलानिया ही कह गुज़रूँ? हक़ीक़त यह है कि यह किताब नहीं कुछ और ही शय है!

यह ज़ाते हक़ सुब्हानहु व तआला (का कलाम है लिहाज़ा उसी) के मानिन्द पोशीदा भी है और ज़ाहिर भी, और जीती-जागती बोलती भी है और हमेशा क़ायम रहने वाली भी!

(यह किताबे हकीम) जब किसी के बातिन में सरायत (जम) कर जाती है तो उसके अंदर एक इंक़लाब बरपा हो जाता है, जब किसी के अंदर की दुनिया बदल जाती है तो उसके लिये पूरी दुनिया ही इंक़लाब की ज़द में आ जाती है।"

क़ुरान हकीम के बारे में मज़ीद लिखते हैं:

सद जहाने ताज़ा दर आयाते ऊस्त
अस्र हा पेचीदा दर आनाते ऊस्त!

"इसकी आयतों में सैंकड़ों ताज़ा जहान आबाद हैं और इसके एक-एक लम्हें में बेशुमार ज़माने मौजूद हैं।" (गोया हर ज़माने में यह क़ुरआन एक नई शान और नई आन-बान के साथ दुनिया में आया है और आता रहेगा।)

अब आप अल्लामा इक़बाल के तीन अशआर मुलाहिज़ा कीजिए जो उन्होंने नबी अकरम ﷺ से मुनाजात (प्रार्थना) करते हुए कहे। इनसे आपको अंदाज़ा होगा कि उन्हें कितना यक़ीन था कि मेरे फ़िक्र का मिम्बा (स्रोत) क़ुरआन हकीम है। चुनाँचा "मस्नवी इसरारो रमूज़" के आख़िर में "अर्ज़े हाले मुसन्निफ़ बहुज़ूर रहमतुल लिल्आलमीन ﷺ" के ज़ेल में यहाँ तक लिख दिया कि:

गर दिलम आईना बे जौहर अस्त
वर बहर्फ़म ग़ैर क़ुराँ मज़मर अस्त
पर्दा-ए-नामूसे-ए-फ़िकरम चाक कुन
ईं ख़याबाँ रा ज़ख़ारम पाक कुन!
रोज़े महशर ख़्वार व रुस्वा कुन मरा!
बे नसीब अज़ बोसा पा कुन मरा!

"अगर मेरे दिल की मिसाल उस आईने की सी है जिसमें कोई जौहर ही ना हो, और अग़र मेरे कलाम में क़ुरआन के सिवा किसी और शय की तर्जुमानी है, तो (ऐ नबी ﷺ!) आप मेरे नामूसे फ़िक्र का पर्दा ख़ुद चाक फ़रमा दें और इस चमन को मुझ जैसे ख़ार से पाक कर दें। (मज़ीद बीराँ) हश्र के दिन मुझे ख़्वार व रुसवा कर दें और (सबसे बढ़ कर यह कि) मुझे अपनी क़दमबोसी की सआदत से महरूम फ़रमा दें!"

मैंने अपनी इम्कानी हद तक क़ुरआन हकीम का पूरी बारीक बीनी से मुताअला किया है और इस पर ग़ौर फ़िक्र और सोच-विचार किया है। मैंने अल्लामा इक़बाल का उर्दू और फ़ारसी कलाम भी पढ़ा है। इसके बाद मैंने यह बात रिकॉर्ड करानी ज़रूरी समझी है कि अल्लामा इक़बाल के बारे में मैंने जो बात 1973 ईसवी में कही आज भी मैं उसी बात पर क़ायम हूँ कि "इस दौर में अज़मते क़ुरआन और मर्तबा व मक़ामे क़ुरआन का इन्कशाफ़ जिस शिद्दत के साथ और जिस दर्जे में अल्लामा इक़बाल पर हुआ शायद ही किसी और पर हुआ हो।" और यह कि मेरे नज़दीक इस दौर का सबसे बड़ा तर्जुमानुल क़ुरआन और दाई इलल क़ुरआन इक़बाल है। अल्लामा इक़बाल मुसलमानों की क़ुरआन से दूरी पर मर्सिया कहते:

जानता हूँ मैं यह उम्मत हामिले क़ुराँ नहीं
है वही सरमाया दारी बंदा-ए-मोमिन का दीं!

मुसलमानों को क़ुरआन की तरफ़ मुतवज्जह करते हुए कहते हैं:

बायातिश तरा कारे जुज़ ईं नीस्त
कि अज़ यासीन अव आसाँ बमीरी!

"इस क़ुरआन के साथ तुम्हारा इसके सिवा और कोई सरोकार नहीं रहा कि तुम किसी शख़्स को आलमे नज़ा में इसकी सूरह यासीन सुना दो, ताकि उसकी जान आसानी से निकल जाए।"

हमारे यहाँ सूफ़ी और वाअज़ हज़रात ने क़ुरआन को छोड़ कर अपनी मजालिस और अपने वाज़ के लिये कुछ और चीज़ों को मुन्तख़ब कर लिया है, तो इस पर इक़बाल ने किस क़दर दर्दनाक मर्सिये कहे हैं और किस क़दर सही नक्शा खींचा है:

सूफ़ी पशमिना पोशे हाल मस्त
अज़ शराबे नग़मा क़वाल मस्त
आतिश अज़ शेरे इराक़ी दर दिलश
दर नमी साज़द ब-क़ुराँ मुफ़फिलश

और:

वाज़े दस्ताँ ज़न व अफ़साना बंद
मानी ऊ पस्त व हर्फ़े ऊ बुलंद
अज़ ख़तीब व देलमी गुफ्तारे अव
बा ज़ईफ़ व शाज़ व मरसिल कारे ऊ!

"अदना लिबास में मल्बूस और अपने हाल में मस्त सूफी क़व्वाल के नग़मे की शराब ही से मदहोश है। उसके दिल में इराक़ी के किसी शेर से तो आग सी लग जाती है लेकिन उसकी महफ़िल में क़ुरआन का कहीं गुज़र नहीं!

(दूसरी तरफ़) वाइज़ का हाल यह है कि हाथ भी ख़ूब चलाता है और समाँ भी ख़ूब बाँध देता है और उसके अल्फ़ाज़ भी पुर शिकवा और बुलंद व बाला हैं, लेकिन मायने के ऐतबार से निहायत पस्त और हल्के! उसकी सारी गुफ़्तगू (बजाए क़ुरआन के) या तो ख़तीब बग़दादी से माख़ूज़ होती है या इमाम देलमी से, और उसका सारा सरोकार बस ज़ईफ़, शाज़ और मरसिल हदीसों से रह गया है!"

अल्लामा इक़बाल के नज़दीक मुसलमानों के ज़वाल व इज़्महलाल (तड़प) का और उम्मते मुस्लिमा के नक्बत (कष्ट) व इफ़लास (तंगी) और ज़िल्लत व ख्वारी का असल सबब क़ुरआन से दूरी और किताबे इलाही से बादुही है। चुनाँचे "जवाबे शिकवा" का एक शेर मुलाहिज़ा कीजिये:

वो ज़माने में मौअज़्ज़ज़ थे मुसलमाँ होकर
और तुम ख़्वार हुए तारिके क़ुराँ हो कर!

बाद में इसी मज़मून का इआदा (repeat) अल्लामा मरहूम ने फ़ारसी में निहायत पुर शिकवा अल्फ़ाज़ और हद दर्जा दर्दअँगेज़ और हसरत आमेज़ पैराए में यूँ किया:

ख़्वार अज़ महजूरी क़ुराँ शदी
शिकवा सन्ज गर्दिशे दौराँ शदी
ऐ चू शबनम बर ज़मीन अफ़्तनदह
दर बग़ल दारी किताबे ज़िन्दाह!

"(ऐ मुसलमान!) तेरी ज़िल्लत और रुसवाई का असल सबब तो यह है कि तू क़ुरआन से दूर और बे-ताल्लुक़ हो गया है, लेकिन तू अपनी इस ज़बूं हाली पर इल्ज़ाम गर्दिशे ज़माना को दे रहा है! ऐ वो क़ौम जो शबनम के मानिन्द ज़मीन पर बिखरी हुई है (और पाँव तले रौंदी जा रही है)! उठ कि तेरी बग़ल में एक किताबे ज़िन्दा मौजूद है (जिसके ज़रिये तू दोबारा बामे उरूज़ [शिखर] पर पहुँच सकती है।)"

मैं अपना यह तास्सुर एक बार फिर दोहरा रहा हूँ कि असरे हाज़िर में क़ुरआन की अज़मत जिस दर्जा उन पर मुन्कशिफ़ हुई थी, मैं अपनी महदूद मालूमात की हद तक कहने को तैयार हूँ कि वह मुझे कहीं और नज़र नहीं आती। मेरे नज़दीक अल्लमा इक़बाल दौरे हाज़िर में ऐजाज़े क़ुरआन का एक अज़ीम मज़हर हैं।

❀ ❀ ❀

बाब हश्तम (आँठवा)

क़ुरान मजीद से हमारा ताल्लुक़
क़ुरान "हबलुल्लाह" है!

जब हम कहते हैं कि क़ुरान "हबलुल्लाह" है! तो इसके क्या मायने हैं? "हबल" के एक मायने रस्सी के हैं और यही असल मायने हैं। सूरतुल लहब में यह लफ्ज़ आया है: {فِيْ جِيْدِهَا حَبْلٌ مِّنْ مَّسَدٍ} (आयत:5) यानी मूंज की बटी हुई रस्सी। इमाम राग़िब रहि० ने इसकी ताबीर की है: "استعير للوصل ولكل ما يتوسل بہ الى شىء" यानी किसी शय से जुड़ने के लिये और जिस शय से जुड़ा जाये उसके लिये इस्तआरतन (रूपक) यह लफ्ज़ इस्तेमाल होता है। अहद, क़ौल व करार और मीसाक़ दो फरीक़ों को बाहम (एक साथ) जोड़ देता है। चुनाँचे यह लफ्ज़ अहद के मायने में भी आता है, और क़ुरान हकीम में यह ऐसे अहद के लिये आया है जिससे किसी को अमन मिल रहा हो, हिफ़ाज़त और अमान हासिल हो रही हो। सूरह आले इमरान (आयत 112) में यहूद के बारे में इर्शाद हुआ:

ضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ اَيْنَ مَا ثُقِفُوْٓا اِلَّا بِحَبْلٍ مِّنَ اللّٰهِ وَحَبْلٍ مِّنَ النَّاسِ وَبَاۗءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الْمَسْكَنَةُ

"यह जहाँ भी पाये गये इन पर ज़िल्लत की मार ही पड़ी, सिवाय इसके कि कहीं अल्लाह के ज़िम्मे या इन्सानों के ज़िम्मे में पनाह मिल गयी। यह अल्लाह के ग़ज़ब में घिर चुके हैं, इन पर मोहताजी और कम हिम्मती मुसल्लत कर दी गयी है।"

गोया खुद अपने बल पर, अपने पाँव पर खड़े होकर, ख़ुद मुख्तारी की असास (self-sufficient foundation) पर उनके लिये इज़्ज़त का मामला इस दुनिया में नहीं है। यह क़ुरान मजीद की पेशनगोई है और मौजूदा रियासते इसराइल इसका वाज़ेह सबूत है। अमेरिका अगर एक दिन के लिये भी अपनी हिफ़ाज़त हटा ले तो इसराइल का वजूद बाक़ी नहीं रहेगा।

क़ुरान मजीद (आले ईमरान:103) में अहले ईमान से फ़रमाया गया है:

وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا

"अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ लो सब मिल कर।"

अलबत्ता "हबलुल्लाह" क्या है? क़ुरान में इसकी सराहत (विवरण) नहीं है। और क़ुरआन मजीद में जो बात पूरी तरह वाज़ेह ना हो, मुज्मल (संक्षिप्त) हो, उसकी तशरीह (व्याख्या) और तबयीन (समझाना) रसूल अल्लाह ﷺ का फर्ज़े मन्सबी (कर्तव्य) है। अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी:

وَاَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الذِّكْرَ لِتُبَيِّنَ لِلنَّاسِ مَا نُزِّلَ اِلَيْهِمْ

"और हमने (ऐ नबी ﷺ) आपकी तरफ़ 'अज़ ज़िक्र' नाज़िल किया, ताकि जो चीज़ उनके लिये उतारी गयी है आप उसे उन पर वाज़ेह करें।" (सूरह नहल:44)

चुनाँचे अहादीस नबवी ﷺ में सराहत मौजूद है कि "हबलुल्लाह" क़ुरान मजीद है। सही मुस्लिम में हज़रत ज़ैद बिन अरक़म (रज़ि०) से मरवी यह हदीस नक़ल हुई है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

اَلَا وَاِنِّی تَارِكٌ فِيْكُمْ ثَقَلَيْنِ، اَحَدُهُمَا كِتَابُاللهِ عَزَّوَجَلَّ هُوَ حَبْلُ اللهِ....

"आगाह रहो! मैं तुम्हारे माबैन (बीच) दो ख़ज़ाने छोड़े जा रहा हूँ, उनमें से एक अल्लाह की किताब है, वही हबलुल्लाह है....."

क़ुरान हकीम के बारे में हज़रत अली (रज़ि०) से एक तवील हदीस मरवी है, जिसमें अल्फ़ाज़ आये हैं: ((هُوَ حَبْلُ اللهِ الْمَتِيْنُ)) "यह (क़ुरान) ही अल्लाह की मज़बूत रस्सी है।" यह रिवायत सुनन तिरमिज़ी और सुनन दारमी में मौजूद है। मज़ीद बराँ (बढ़ कर) हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से जो रिवायत रज़ीन में आयी है उसमें भी यही अल्फ़ाज़ हैं: ((هُوَ حَبْلُ اللهِ الْمَتِيْنُ)) "यह क़ुरान ही अल्लाह की मज़बूत रस्सी है।" सुनन दारमी में हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल अल्लाह ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

اِنَّ هٰذَا الْقُرْآنَ حَبْلُ اللهِ وَالنُّوْرُ الْمُبِيْنُ

"यक़ीनन यह क़ुरान हबलुल्लाह और नूरे मुबीन है।"

क़ुरान को "रस्सी" किस ऐतबार से कहा गया है, इसके दो पहलु हैं। एक तो बंदा इस रस्सी के ज़रिये अल्लाह से जुड़ता है। यह रस्सी हमें अल्लाह से जोड़ने वाली है। "ताल्लुक़ माअ अल्लाह" और "तक़र्रुब इलल्लाह" दोनों तसव्वुफ़ (रहस्यवाद) की इस्तलाहें (मुहावरे) हैं। ताल्लुक़ के मायने हैं लटक जाना। "अलक़" लटकी हुई शय को कहते हैं। "ताल्लुक़ माअ अल्लाह" का

मफ़हूम होगा अल्लाह से लटक जाना, यानि अल्लाह से चिमट जना, अल्लाह के साथ जुड़ जाना। इसी तरह "तक़र्रुब इलल्लाह" का मतलब है अल्लाह से क़रीब से क़रीब तर होने की कोशिश करना। सलूक (व्यवहार) और तरीक़त (रास्ता) का मक़सद यही है। ताल्लुक़ माअ अल्लाह में इज़ाफ़े और तक़र्रुब इलल्लाह का मौअसर तरीन (सबसे प्रभावी) और सहल तरीन (सबसे आसान) ज़रिया क़ुरआन हकीम है।

इस ऐतबार से दो हदीसें मुलाहिज़ा कीजिए। एक के रावी हज़रत अबदुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) हैं। हदीस के अल्फ़ाज़ हैं:

اَلْقُرْاٰنُ حَبْلُ اللهِ الْمَمْدُوْدُ مِنَ السَّمَاءِ اِلَى الْاَرْضِ

"यह क़ुरान अल्लाह की रस्सी है जो आसमान से ज़मीन तक तनी हुई है।"

यही अल्फ़ाज़ हज़रत ज़ैद बिन अरक़म (रज़ि०) से मरफ़ूअन भी रिवायत किये गए हैं। यानी अगर अल्लाह से जुड़ना है, अल्लाह से ताल्लुक़ क़ायम करना है तो इस क़ुरान को मज़बूती के साथ थाम लो, इससे तुम अल्लाह से जुड़ जाओगे, अल्लाह का क़ुर्ब हासिल कर लोगे।

दूसरी मौअज्जम कबीर (क़ीमती खज़ाना) तिबरानी की बड़ी प्यारी रिवायत है। उसमें इन अल्फ़ाज़ में नक़्शा खींचा गया है कि हुज़ूर ﷺ अपने हुजरे से बरामद हुए तो आप ﷺ ने मस्जिद के गोशे (कोने) में देखा कि कुछ सहाबा (रज़ि०) क़ुरान का मुज़करा (discussion) कर रहे थे, क़ुरान को समझ और समझा रहे थे। हुज़ूर ﷺ उनके पास तशरीफ़ लाये और बड़ा प्यारा सवाल किया:

أَلَسْتُم تَشْهَدُوْنَ اَنْ لَّا اِلٰہَ اِلَّا اللهُ وَاَنِّیْ رَسُوْلُ اللهِ وَاَنَّ هٰذَا الْقُرْآنَ جَاءَ مِنْ عِنْدِ اللهِ؟

"क्या तुम इस बात की गवाही नहीं देते कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मैं अल्लाह का रसूल हूँ और यह क़ुरान अल्लाह के पास से आया है?"

सहाबा (रज़ि०) का जवाब इसके सिवा और क्या हो सकता था: "بَلٰى يَا رَسُوْلَ اللهِ!" यानी "क्यों नहीं ऐ अल्लाह के रसूल ﷺ, हम इसके गवाह हैं! इस पर आप ﷺ ने फ़रमाया:

فَاسْتَبْشِرُوْا فَاِنَّ هٰذَا الْقُرْآنَ طَرَفُهٗ بِاَيْدِيْكُمْ وَ طَرَفُهٗ بِيَدِ اللهِ

"पस तुम खुशियाँ मनाओ, इसलिये कि यह क़ुरान वह शय है जिसका एक सिरा तुम्हारे हाथ में है और दूसरा सिरा अल्लाह के हाथ में है।"

इन अहादीस मुबारका से "हबलुल्लाह" का यह तसव्वुर वाज़ेह हो जाता है कि यह अल्लाह के साथ जोड़ने वाली शय है।

अभी हमने जिस हदीस का मुताअला किया उसमें क़ुरआन हकीम के लिये "جَاءَ مِنْ عِنْدِ اللهِ" के अल्फ़ाज़ आये हैं, कि यह क़ुरान अल्लाह के पास से आया है। मुस्तदरक हाकिम और मरासील अबु दाऊद में हज़रत अबुज़र गफ़ारी (रज़ि०) से रसूल अल्लाह ﷺ की यह हदीस नक़ल हुई है:

اِنَّكُمْ لَا تَرْجِعُوْنَ اِلَى اللهِ بِشَیْءٍ اَفْضَلَ مِمَّا خَرَجَ مِنْهُ يَعْنِی الْقُرْآنَ

यानि "तुम लोग अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू और उसके यहाँ तक़र्रुब उस चीज़ से बढ़ कर किसी और चीज़ से हासिल नहीं कर सकते जो ख़ुद उसी (अल्लाह तआला) से निकली है, यानि क़ुरान मजीद।"

दरहक़ीक़त क़ुरान चूँकि अल्लाह का कलाम है और कलाम मुतकल्लिम की सिफत होता है, तो इससे बढ़ कर क़रीब होने का कोई और ज़रिया हो ही नहीं सकता। चुनाँचे जब कोई शख्स क़ुरान पढ़ता है तो गोया वह अल्लाह से हमकलाम होता है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक रहि० तबै ताबईन के दौर की शख्सियत हैं। उन्होंने अपना मामूल बना लिया था कि साल में छः महीने सरहदों पर जिहाद में शरीक होते। उस दौर में दारुल इस्लाम की सरहदें बढ़ रही थीं और उसके लिये जिहाद जारी था। जबकि छः महीने आप रहि० घर पर गुज़ारते और इस अरसे में लोगों से मिलने-जुलने से हत्तल इम्कान गुरेज़ करते। सिर्फ नमाज़ बा-जमात के लिये मस्जिद में आते, बाक़ी वक़्त घर पर ही रहते। किसी ने कहा कि अब्दुल्लाह! आप तन्हाई पसंद हो गए हैं, तन्हाई से आपकी तबीयत उकताती नहीं? उन्होंने फ़रमाया: "क्या तुम उस शख्स को तन्हा समझते हो जो अल्लाह से हमकलाम होता है और रसूल अल्लाह ﷺ की सोहबत से फैज़याब होता है?" लोग हैरान हुए कि यह क्या कह रहे हैं। जब इसकी वज़ाहत तलब की गई तो फ़रमाया कि देखो जब मैं अकेला होता हूँ तो क़ुरान पढ़ता हूँ या हदीस पढ़ता हूँ। जब क़ुरान पढ़ता हूँ तो अल्लाह से हमकलाम होता हूँ और जब हदीस पढ़ता हूँ तो रसूल अल्लाह ﷺ की सोहबत से फ़ैज़याब होता हूँ। तुम मुझे तन्हा ना समझो:

दीवाना-ए-चमन की सैरें नहीं हैं तन्हा
आलम है इन गुलों में, फूलों में बस्तियाँ हैं!

मसनद अहमद, तिरमिज़ी, अबु दाऊद, निसाई, इब्ने माजा और सही इब्ने हब्बान में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से यह हदीसे नबवी मन्कूल है:

يُقَالُ لِصَاحِبِ الْقُرْآنِ اقْرَأْ وَارْتَقِ وَرَتِّلْ كَمَا كُنْتَ تُرَتِّلُ فِى الدُّنْيَا فَإِنَّ مَنْزِلَکَ عِنْدَ آخِرِ آيَةٍ تَقْرَأُهَا

"(क़यामत के दिन) साहिबे क़ुरान से कहा जायेगा कि क़ुरान शरीफ़ पढ़ता जा और (जन्नत के दरजात पर) चढ़ता जा, और ठहर-ठहर कर पढ़ जैसा कि तू दुनिया में ठहर-ठहर कर पढ़ता था। पस तेरा मक़ाम वही है जहाँ आखरी आयत हर पहुँचे।"

लेकिन वाज़ेह रहे कि साहिबे क़ुरान से मुराद सिर्फ़ हाफ़िज़े क़ुरान या हमारे यहाँ पाए जाने वाले क़ारी नहीं हैं, बल्कि वह हाफिज़ व क़ारी मुराद हैं जो क़ुरान के इल्म व हिकमत से भी वाकिफ़ हैं, उसको पढ़ते भी हैं और उस पर अमल पैरा (पालन करना) भी हैं। जन्नत में इस क़ुरान के ज़रिये उनके दरजात में तरक्क़ी होती चली जायेगी और उनका आखरी मक़ाम वहाँ मुअय्यन होगा जहाँ उनका सरमाया-ए-क़ुरान ख़त्म होगा। तो वाक़्या यह है कि तक़र्रुब इलल्लाह और वसल इलल्लाह का मौअस्सर तरीन (असरदार) ज़रिया क़ुरान हकीम ही है। मैंने इसी लिये इमाम राग़िब रहि० के अल्फ़ाज़ का हवाला दिया था कि "हबल" का लफ्ज़ वसल के लिये इस्तआरतन (रूपक) इस्तेमाल होता है और यह हर उस शय के लिये इस्तेमाल होगा जिसके ज़रिये किसी शय के साथ जुड़ा जाये। इस मायने में हबलुल्लाह क़ुरान मजीद है।

अगर पैराशूट की मिसाल सामने रखें तो जुमला ईमानियात इस क़ुरान के साथ इस तरह जुड़े हुए हैं जिस तरह पैराशूट की छतरी की रस्सियाँ नीचे आकर एक जगह जुड़ जाती हैं। जब पैराशूट खुलता है तो उसकी छतरी किस क़दर वसीअ (चौड़ी) होती है, लेकिन उसकी सारी रस्सियाँ एक जगह आकर जुड़ी हुई होती हैं। बा-अल्फ़ाज़ दीगर (दूसरे लफ़्ज़ों में) जितने भी शोबे हैं वह सबके सब क़ुरान के साथ मुन्सलिक (जुड़े हुए) हैं। चुनाँचे क़ुरान पर यह यक़ीन मतलूब है कि यह इन्सानी कलाम नहीं है, बल्कि इसका मिम्बा और सरचश्मा वही है जो मेरी रूह का मिम्बा और सरचश्मा है। यह कलाम भी ज़ाते बारी तआला ही से सादर (जारी) हुआ है और मेरी रूह भी अल्लाह ही के अम्रे कुन (हुक्म) का ज़हूर (हाजिर) है। इस अन्दाज़ से क़ुरान पर यक़ीन, अल्लाह तआला पर यक़ीन और क़ुरान लाने वाले मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर यक़ीन मतलूब है। ("हक़ीक़ते ईमान" के मौज़ू पर मेरी पाँच तक़ारीर में यह मज़मून आ चुका है)।

एक ईमान तो तक़लीदी (बनावटी) है, यानि गैर शऊरी ईमान, कि एक यक़ीन की कैफ़ियत पैदा हो जाती है, चाहे वह अला वजह अल् बसीरत (अंतर्द्रष्टि में) ना हो, और वह भी बहुत बड़ी दौलत है, लेकिन इससे कहीं ज़्यादा क़ीमती ईमान वह है जो अला वजह अल बसीरत हो। अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी:

قُلْ هٰذِهٖ سَبِيْلِيْٓ اَدْعُوْٓا اِلَى اللّٰهِ ۣ عَلٰى بَصِيْرَةٍ اَنَا وَمَنِ اتَّبَعَنِيْ ۭ

"(ऐ नबी ﷺ!) कह दीजिये कि यह मेरा रास्ता है, मैं अल्लाह की तरफ़ बुलाता हूँ समझ-बूझ कर और जो मेरे साथ हैं (वह भी)।" (युसुफ़:108)

अला वजह अल् बसीरत ईमान यानि शऊरी ईमान, इकतसाबी (प्राप्त) ईमान और हक़ीक़ी ईमान का वाहिद मिम्बा और सरचश्मा क़ुरान हकीम है। मौलाना ज़फ़र अली खान बहुत ही सादा अल्फ़ाज़ में एक बहुत बड़ी हक़ीक़त बयान कर गये हैं:

वो जिन्स नहीं ईमान जिसे ले आऐं दुकान-ए-फ़लसफ़ा से
ढूंढे से मिलेगी आक़िल को यह क़ुरआं के सिपारों में

आक़िल यानी गौरो फ़िक्र करने वाले और सोच-विचार करने वाले के लिये ईमान का मिम्बा व सरचश्मा सिर्फ़ क़ुरआने हकीम है।

क़ुरान हकीम के "हबलुल्लाह" होने का एक दूसरा पहलु भी है और वह यह कि अहले ईमान को जोड़ने वाली रस्सी, उनको बाहम एक-दूसरे से बाँध देने वाली शय, उनको बुनियादे मरसूस बनाने वाली चीज़ यह क़ुरान है। इसलिये कि क़ुरान हकीम में जहाँ अल्लाह की रस्सी को मज़बूती के साथ थामने का हुक्म आया है वहाँ उसके साथ ही बाहम मुतफ़र्रिक़ (अलग) होने से रोका गया है। फ़रमाया:

وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا وَّلَا تَفَرَّقُوْا ۠

"और मज़बूती से थाम लो अल्लाह की रस्सी को सब मिल-जुल कर और तफ़रक़ा मत डालो!"

अहले ईमान को जोड़ने वाली और बुनयाने मरसूस (ठोस बुनियाद) बनाने वाली रस्सी यही क़ुरान हकीम है। इसलिये कि इन्सानी इत्तेहाद वही मुस्तहकम (स्थिर) और पायेदार होगा जो फ़िक्र व नज़र की हम आहंगी के साथ हो। बहुत से इत्तेहाद वक़्ती तौर पर वजूद में आ जाते हैं। जैसे कुछ सियासी मसलहतें हैं तो इत्तेहाद क़ायम कर लिया, कोई दुनियावी मफ़ादात हैं तो उनकी बिना पर इत्तेहाद क़ायम कर लिया। यह इत्तेहाद हक़ीक़ी नहीं होते और ना ही पायेदार और मुस्तहकम होते हैं। इन्सान हैवाने आक़िल है। यह सोचता है, ग़ौर करता है, इसके नज़रियात हैं, इसके कुछ एहराफ व मक़ासिद हैं, कोई नस्बुल ऐन (लक्ष्य) है। नज़रियात, मक़ासिद और नस्बुल ऐन का बड़ा गहरा रिश्ता होता है। तो जब तक उनमें हम आहंगी ना हो कोई इत्तेहाद पायेदार और मुस्तहकम नहीं होगा। इस ऐतबार से अल्लाह की इस रस्सी को मज़बूती से थामोगे तो गोया दो रिश्ते क़ायम हो गये। एक रिश्ता अहले ईमान का अल्लाह के साथ और एक रिश्ता अहले ईमान का एक-दूसरे के साथ। जैसे कुल शरीअत को ताबीर किया जाता है कि शरीअत नाम है हुक़ूक़ुल्लाह और हुक़ूक़ुल इबाद का। अल्लाह के साथ जोड़ने वाली सबसे बड़ी इबादत नमाज़ है और बन्दों के साथ ताल्लुक़ क़ायम करने वाली शय ज़कात है। इसी तरह हबलुल्लाह एक तरफ़ अहले ईमान को अल्लाह से जोड़ रही है और दूसरी तरफ़ अहले ईमान को आपस में जोड़ रही है। यह उन्हें बुनयाने मरसूस (ठोस बुनियाद) और "كَجَسَدٍ وَاحِدٍ" बना देने वाली शय है। यही वह बात है जिसे अल्लमा इक़बाल ने इन्तहाई ख़ूबसूरती से कहा है:

अज़ यक आईनी मुसलमाँ ज़िन्दा अस्त
पैकर मिल्लत अज़ क़ुरआं ज़िन्दा अस्त
मा हमा ख़ाक व दिले आगाह ऊस्त
ऐतशामशे कुन कि हबलुल्लाह ऊस्त!

"वहदते आईन ही मुस्लमान की ज़िन्दगी का असल राज़ है और मिल्लते इस्लामी के जसद-ए-ज़ाहिरी में रुहे बातिनी की हैसियत सिर्फ़ क़ुरान को हासिल है। हम तो सर से पाँव तक ख़ाक ही ख़ाक हैं, हमारा क़ल्बे ज़िन्दा और हमारी रूहे ताबंदाह (फॉस्फोरस) तो असल में क़ुरान ही है। लिहाज़ा ऐ मुस्लमान! तू क़ुरआन को मज़बूती से थाम ले कि 'हबलुल्लाह' यही है।"

हबलुल्लाह के बारे में मुफ़स्सिरीन के यहाँ बहुत से अक़वाल मिलते हैं कि हबलुल्लाह से मुराद क़ुरान है, कलमा-ए-तैय्यबा है, इस्लाम है। यह सारी चीज़ें अपनी जगह पर दुरुस्त हैं लेकिन अहादीस नबवी ﷺ की रोशनी में इसका मिस्दाक़े कामिल क़ुरान ही है। और फिर इसकी जिस क़दर उम्दा ताबीर अल्लामा इक़बाल ने की है, यह फसाहत व बलाग़त के ऐतबार से भी मेरे नज़दीक बहुत उम्दा मक़ाम है:

मा हमा ख़ाक व दिले आगाह ऊस्त
ऐतशामशे कुन कि हबलुल्लाह ऊस्त!

नोट कीजिये कि क़ुरान मजीद में: {وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا وَّلَا تَفَرَّقُوْا} के अल्फ़ाज़ के बाद फ़रमाया गया है: (आले इमरान:103)

وَاذْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ اِذْ كُنْتُمْ اَعْدَاۗءً فَاَلَّفَ بَيْنَ قُلُوْبِكُمْ فَاَصْبَحْتُمْ بِنِعْمَتِهٖٓ اِخْوَانًا ۚ

"और याद करो अपने ऊपर अल्लाह की उस नेअमत को कि जब तुम बाहम दुश्मन थे, फिर उसने तुम्हारे दिलों को जोड़ दिया तो तुम उसके फ़ज़्ल से भाई-भाई हो गये।"

यह क़ुरान मजीद ही है जो अहले ईमान के दिलों को जोड़ता और उनको बाहम पेवस्त (संयुक्त) करता है, और यह दिली ताल्लुक़ और दिली हम आहंगी ही है जो मुसलमानों को बुनयाने मरसूस (ठोस बुनियाद) बनाने वाली शय है।

मुसलमानों पर क़ुराने मजीद के हुक़ूक़

तआरुफे क़ुरान के ज़िमन में जो कुछ मैंने अर्ज़ किया उन सब बातों का जो अमली नतीजा निकलना चाहिये वह क्या है? यानि क़ुरान हकीम के बारे में मुझ पर और आप पर क्या ज़िम्मेदारी आयद (लागू) होती है? इसके ऐतबार से मैं ख़ास तौर पर अपनी किताब "मुसलमानों पर क़ुरान मजीद के हुक़ूक़" का ज़िक्र करना चाहता हूँ जो हमारी तहरीक रुजू इलल क़ुरान के लिये दो बुनयादों में से एक बुनियाद की हैसियत रखती है। हमारी इस तहरीक का आगाज़ 1965 ईस्वी से हुआ था। इब्तदाई छ: सात साल तो मैं तन्हा था। ना कोई अंजुमन थी, ना कोई इदारा, ना जमाअत। फिर अंजुमन खुद्दामुल क़ुरान

क़ायम हुई, फिर 1976 ईस्वी में क़ुरान अकेडमी का संगे बुनियाद रखा गया। क़ुरान अकैडमी की तामीरात मुकम्मल होने के बाद फिर उसी के बतन से क़ुरान कालेज की विलादत हुई, जिसके सर पर क़ुरान ऑडिटोरियम का ताज सजा हुआ है। इस पूरी जद्दो-जहद की बुनियाद और असास दो किताबचे हैं: (1) "इस्लाम की निशाते सानिया। करने का असल काम।" यह मज़मून मैंने 1967 ईस्वी में मीसाक़ के इदारे के तौर पर लिखा था। (2) मुसलमानों पर क़ुरान मजीद के हुक़ूक़।" यह किताबचा मेरी दो तक़रीरों पर मुश्तमिल है जो मैंने 1968 ईस्वी में की थीं।

इसका पसमंज़र यह है कि उस ज़माने में जशने ख़ैबर और जशने मेहरान वगैरह जैसे मुख्तलिफ़ उनवानात से जशन मनाये जा रहे थे, जिनमें राग-रंग की महफ़िलें भी होती थीं। सदर अय्यूब खान का ज़माना था। अगरचे शिकस्त व रेख्त (विनाश) के आसार ज़ाहिर हो रहे थे, लेकिन "सब अच्छा है" के इज़हार के लिये यह शानदार तक़रीबात मुनअक्क़िद की जा रही थीं। यह गोया उनके दौरे हुकूमत की आख़री भड़क थी, जैसे बुझने से पहले चिराग़ भड़कता है।

अल्लमा इक़बाल ने अपनी नज़्म "इब्लीस की मजलिसे शूरा" में इब्लीस की तर्जुमानी इन अल्फ़ाज़ में की है: "मस्त रखो ज़िक्र व फ़िक्रे सुबह गाही में इसे!" लेकिन उन दिनों ज़िक्र व फ़िक्र की बजाये लोगों को राग-रंग की महफ़िलों में मस्त रखने का अहतमाम हो रहा था। उसी ज़माने में मज़हबी लोगों को रिशवत के तौर पर "जशने नुज़ूले क़ुरान" अता किया गया कि तुम भी जशन मनाओ और अपना ज़ोक़ व शोक़ पूरा कर लो। चुनाँचे चौदह सौ साला "जशने नुज़ूले क़ुरान" का इनअक़ाद (आयोजन) हुआ। इसके ज़िमन में क़िरात की बड़ी-बड़ी महफ़िलें मुनअक़्क़िद (आयोजित) हुईं, जिनमें पूरी दुनिया से क़ुर्रा (क़ारी) हज़रात शरीक हुए। इसी सिलसिले में सोने के तार से क़ुरान लिखने का प्रोजेक्ट शुरू हुआ।

उस वक़्त मेरा ज़हन मुन्तक़िल हुआ (बदला) कि क्या क़ुरान हकीम का हम पर यही हक़ है? क्या अपने इन कामों से हम क़ुरान मजीद का हक़ अदा कर रहे हैं? चुनाँचे मैंने मस्जिदे ख़ज़रा समनाबाद में अपने दो खुत्बाते जुमा में मुसलमानों पर क़ुरान मजीद के हुक़ूक़ बयान किये कि हर मुसलमान पर हस्बे इस्तअदाद (ताक़त के अनुसार) क़ुरान मजीद के पाँच हुक़ूक़ आयद होते हैं:

1) इसे माने जैसा कि मानने का हक़ है। (ईमान व ताज़ीम)
2) इसे पढ़े जैसा कि पढ़ने का हक़ है। (तिलावत व तरतील)
3) इसे समझे जैसा कि समझने का हक़ है। (तज़क्कुर व तदब्बुर)
4) इस पर अमल करे जैसा कि अमल करने का हक़ है। (हुक्म व अक़ामत)

इन्फरादी ज़िन्दगी में हुक्म बिल क़ुरआन यह है कि हमारी हर राय और हर फ़ैसला क़ुरान पर मब्नी हो। और इज्तमाई ज़िन्दगी में क़ुरान पर अमल की सूरत अक़ामत मा अनज़ल मिनल्लाह यानि क़ुरान के अता करदा निज़ामे अदले इज्तमाई को क़ायम करना है। क़ुराने हकीम में इरशाद है:

قُلۡ يٰۤاَهۡلَ الۡكِتٰبِ لَسۡتُمۡ عَلٰى شَىۡءٍ حَتّٰى تُقِيۡمُوا التَّوۡرٰىةَ وَالۡاِنۡجِيۡلَ وَمَاۤ اُنۡزِلَ اِلَيۡكُمۡ مِّنۡ رَّبِّكُمۡ

"ऐ किताब वालो! तुम्हारा कोई मक़ाम नहीं जब तक कि तुम क़ायम ना करो तौरात और इन्जील को और जो कुछ तुम्हारी जानिब नाज़िल किया गया है तुम्हारे रब की तरफ़ से।" (सूरह मायदा:68)

5) क़ुरान को दूसरों तक पहुँचाना, इसे फैलाना और आम करना। (तबलीग व तबईन)

इन पाँच उन्वानात के तहत अल्हम्दुलिल्लाह सुम्मा अल्हम्दुलिल्लाह यह बहुत जामेअ किताबचा मुरत्तब हुआ और बिला मुबालगा यह लाखों की तादाद में छपा है। फिर अंग्रेज़ी, अरबी, फ़ारसी, पश्तो, तमिल, मलेशिया की ज़बान और सिन्धी में इसके तराजिम हुए। जो हजरात भी हमारी इस तहरीक रुजू इलल क़ुरान से कुछ दिलचस्पी रखते हैं, मेरे दुरूस (कोर्स) में शरीक होते हैं या हमारे लिट्रेचर का मुताअला करते हैं उन्हें मेरा नासहाना मशवरा है कि इस किताबचे का मुताअला ज़रूर करें। यह दरहक़ीक़त "तआरुफे क़ुरान" पर मेरे ख़िताबात का लाज़मी नतीजा और उनका ज़रुरी तकमिला है।

यह भी जान लीजिये कि अगर हम यह हुक़ूक़ अदा नही करते तो अज़रुए क़ुरान हमारी हैसियत क्या है। क़ुरान मजीद के हुक़ूक़ को अदा ना करना क़ुरान को तर्क कर (छोड़) देने के मुतरादिफ (बराबर) है। सूरतुल फुरक़ान में मुहम्मद रसूल्लाह ﷺ की फ़रियाद नक़ल हुई है:

وَقَالَ الرَّسُوۡلُ يٰرَبِّ اِنَّ قَوۡمِى اتَّخَذُوۡا هٰذَا الۡقُرۡاٰنَ مَهۡجُوۡرًا ۝۳۰

"और पैग़म्बर कहेगा कि ऐ मेरे रब! मेरी क़ौम ने इस क़ुरान को छोड़ रखा था।"

मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी रहि० ने इस आयत के ज़ेल में हाशिये में लिखा है:

> “आयत में अगरचे मज़कूर सिर्फ़ काफ़िरों का है ताहम क़ुरआन की तस्दीक़ ना करना, उसमें तदब्बुर ना करना, उस पर अमल ना करना, उसकी तिलावत ना करना, उसकी तसहीहे क़िरआत की तरफ़ तवज्जो ना करना, उससे ऐराज़ करके दूसरी लग्वियात या हक़ीर चीज़ों की तरफ़ मुतवज्जह होना, यह सब सूरतें दर्जा-ब-दर्जा हिजराने क़ुरान के तहत में दाख़िल हो सकती हैं।”

बहैसियत मुसलमान हम पर क़ुरआन मजीद के जो हुक़ूक़ आयद होते हैं, अगर उन्हें हम अदा नहीं कर रहे तो हुज़ूर ﷺ के इस क़ौल और फ़रियाद का इतलाक़ (लागू) हम पर भी होगा। गोया कि हुज़ूर ﷺ अल्लाह तआला की बारगाह में हमारे ख़िलाफ़ मुद्दई की हैसियत से खड़े होंगे।

अल्लामा इक़बाल इसी आयते क़ुरानी की तरफ़ अपने इस शेर में इशारा करते हैं:

ख्वार अज़ महजूरी क़ुराँ शुदी
शिकवा सन्ज गर्दिशे दौराँ शुदी!

> “(ऐ मुस्लमान!) तेरी ज़िल्लत और रुसवाई का असल सबब तो यह है कि तू क़ुरान से दूर और बेताल्लुक़ हो गया है, लेकिन तू अपनी इस ज़बूँ हाली (बदहाली) का इल्ज़ाम गर्दिशे ज़माना को दे रहा है!”

क़ुरान मजीद में दो मक़ामात पर क़ुरान के हुक़ूक़ अदा ना करने को क़ुरान की तकज़ीब क़रार दिया गया है। आप लाख समझें कि आप क़ुरान मजीद पर ईमान रखते हैं और उसकी तस्दीक़ करते हैं, लेकिन अगर आप उसके हुक़ूक़ की अदायगी अपनी इस्तअदाद (ताक़त) के मुताबिक़, अपनी इम्कानी हद तक नहीं कर रहे तो दरहक़ीक़त क़ुरान को झुठला रहे हैं। साबक़ा उम्मते मुस्लिमा यानि यहूद के बारे में सूरह जुमा में यह अल्फ़ाज़ आये हैं:

مَثَلُ الَّذِيْنَ حُمِّلُوا التَّوْرٰىةَ ثُمَّ لَمْ يَحْمِلُوْهَا كَمَثَلِ الْحِمَارِ يَحْمِلُ اَسْفَارًا ؕ بِئْسَ مَثَلُ الْقَوْمِ الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ؕ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ

“मिसाल उन लोगों की जो हामिले तौरात बनाए गए, फिर उन्होंने उसकी ज़िम्मेदारियों को अदा ना किया, उस गधे की सी है जो किताबों का बोझ उठाये हुए हो। बुरी मिसाल है उस क़ौम की जिसने अल्लाह की आयात को झुठलाया। और अल्लाह ऐसे ज़ालिमों को हिदायत नहीं देता।” (आयत:5)

हमें काँपना चाहिये, लरज़ना चाहिये कि कहीं हमारा शुमार भी इन्हीं लोगों में ना हो जाये।

इस ज़िमन में दूसरा मक़ाम सूरतुल वाक़िया के तीसरे रुकूअ की इब्तदाई आयात हैं:

فَلَآ اُقْسِمُ بِمَوٰقِعِ النُّجُوْمِ ۝۷۵ وَاِنَّهٗ لَقَسَمٌ لَّوْ تَعْلَمُوْنَ عَظِيْمٌ ۝۷۶ اِنَّهٗ لَقُرْاٰنٌ كَرِيْمٌ ۝۷۷ فِيْ كِتٰبٍ مَّكْنُوْنٍ ۝۷۸ لَّا يَمَسُّهٗٓ اِلَّا الْمُطَهَّرُوْنَ ۝۷۹ تَنْزِيْلٌ مِّنْ رَّبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝۸۰ اَفَبِهٰذَا الْحَدِيْثِ اَنْتُمْ مُّدْهِنُوْنَ ۝۸۱ وَتَجْعَلُوْنَ رِزْقَكُمْ اَنَّكُمْ تُكَذِّبُوْنَ ۝۸۲

“पस नहीं, मैं क़सम खाता हूँ तारों के मौक़ों की, और अगर तुम समझो तो यह बहुत बड़ी क़सम है, कि यह एक बुलन्द पाया क़ुरान है, एक महफ़ूज़ किताब में सब्त, जिसे मुतहर्रीन (पाक) के सिवा कोई छू नहीं सकता। यह रब्बुल आलमीन का नाज़िल करदा है। फिर क्या इस कलाम के साथ तुम बेऐतनाई (लापरवाही) बरतते हो, और इस नेअमत में अपना हिस्सा यह रखा है कि इसे झुठलाते हो?”

इस क़ुरान, इस अज़्मत वाली किताब, जो किताबे करीम है, किताबे मकनून है, के बारे में तुम्हारी यह सुस्ती, तुम्हारी यह कस्लमंदी, तुम्हारी यह नाक़द्री और तुम्हारा यह अमली तअतिल (रुकावट) कि तुम इसे झुठला रहे हो! तुमने अपना हिस्सा और नसीब यह बना लिया है कि तुम इसकी तकज़ीब कर रहे हो? तकज़ीब इस मायने में भी कि क़ुरान का इन्कार किया जाए, इसे अल्लाह का कलाम ना माना जाये--- और तकज़ीब अमली के ज़िमन में वह चीज़ भी इसके ताबेअ और शामिल होगी जो मैं बयान कर चुका हूँ। यानि हामिल-ए-किताबे इलाही होने के बावजूद उसकी ज़िम्मेदारियों को अदा ना किया जाये। अल्लाह तआला हमें इस अन्जाम से महफ़ूज़ रखे कि हम भी ऐसे लोगों में शामिल हों। हम में से हर शख़्स को इन हुक़ूक़ के अदा करने की अपनी इम्कानी हद तक भरपूर कोशिश करनी चाहिये।

اقول قولی هذا واسغفر الله لی ولکم السائر المسلمین والمسلمات۔

❀ ❀ ❀